प्रकाशक :
देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

सुलतानमल जैन
अध्यक्ष, जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर

•

द्वितीय संस्करण

•

मूल्य पच्चीस रुपये

•

प्राप्ति-स्थल :

1. प्राकृत भारती अकादमी
   3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय
   मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
   जयपुर–302 003 (राजस्थान)
2. श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
   पो. मेवानगर, स्टे. बालोतरा
   344 025, जि बाड़मेर (राज.)

फ्रैण्ड्स प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर–302 003

Daśavaikālika-Cayanikā
Kamal Chand Sogani/Udaipur/1987.

पं. दलसुख भाई मालवणिया

पं. बेचरदास जीवराज दोशी

एवं

डॉ. नेमिचन्द शास्त्री

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

प्राकृत भारती अकादमी और श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर के संयुक्त प्रकाशन के रूप में प्राकृत भारती का 37वां पुष्प "दशवैकालिक-चयनिका" पाठकों के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है।

"दशवैकालिक" संस्कृत का स्वीकृत रूप है और इसके प्राकृत रूप हैं:—दसवेकालिय, दसवेयालिय और दसवेतालिय। निश्चित समय पर पठन योग्य इस ग्रन्थ में मुख्यतः दस अध्ययन होने के कारण इसका नाम दशवैकालिक ही रूढ हो गया।

अल्पवयस्क क्षुल्लक निर्ग्रन्थ/श्रमण, अल्पतम समय में ही निर्ग्रन्थ के आचार धर्म/का स्वरूप हृदयंगम कर, तदनुरूप आचरण कर, आत्मसिद्धि के सोपान पर चढ़ सके, इसी दृष्टि से मनक-पिता श्रुतधर आचार्य शय्यंभव ने आगम शास्त्रों का दोहन कर सार रूप में इस लघुकायिक ग्रन्थ/शास्त्र का निर्माण किया था। आगमों एवं आचार शास्त्र का नवनीत होने के कारण परवर्ती आचार्यों ने इस दशवैकालिक को महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर दिया और यह नैतिक प्रावधान कर दिया कि जो भी नवदीक्षित हो वह जब तक इस शास्त्र का अध्ययन/योगोद्वहन न कर ले तब तक उसे वृहद् दीक्षा प्रदान न की जाए। इस परम्परा का आज भी आंशिक रूप में यथावत् पालन हो रहा है। आंशिक रूप में इसलिये कि अब दस अध्ययनों में से प्रारम्भ के चार अध्ययनों को मूल मात्र (अर्थ

विवेचन सहित नहीं) कण्ठस्थ करवाकर, योगोद्वहन करवाकर बड़ी दीक्षा देते हैं।

इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय और इसके अन्तरंग स्वरूप का परिचय देते हुए श्री दलसुख मालवणिया ने "दसकालिक सुत्तं" की प्रस्तावना पृष्ठ 4-5 पर लिखा है:—

"इस ग्रन्थ में भिक्षुओं के धर्ममूलक आचार का निरूपण है। खासकर निर्ग्रन्थ मुनियों के आचार के नियमों का विस्तार से निरूपण इस सूत्र में है। उसमें संयम ही केन्द्र में है। वह भिक्षु यदि संयत है तो जीव हिंसा से बचकर किस प्रकार अपना संयमी जीवन धैर्यपूर्वक बितावे इसका मार्गदर्शन इसमें है। अतएव भिक्षु के महाव्रत तथा उसके आनुषंगिक नियमों का वर्णन विस्तार से करना अनिवार्य हो जाता है। यही कारण है कि इसमें पाँच महाव्रत और छठा रात्रि-भोजन विरमण व्रत की चर्चा की गई है। संयम का मुख्य साधन शरीर है और शरीर के लिए भोजन अनिवार्य है। वह भिक्षा से ही सम्भव है। अतएव किस प्रकार भिक्षा ली जाय जिससे देने वालों को तनिक भी कष्ट न हो—और भिक्षु को—योग्य भिक्षा भी मिले यह कहा गया है। जीव में समभाव की पुष्टि अनिवार्य मानी गई है जिससे मनोवांछित भिक्षा न भी मिले तब भी क्लेश मन में न हो तथा अच्छी भिक्षा मिलने पर राग का आविर्भाव न हो यह जीवन मंत्र दिया गया है। संयत पुरुष की भाषा कैसी हो—जिससे किसी के मन में उसके प्रति कभी भी दुर्भाव न हो—यह भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। यह तभी संभव है जब उसमें आचार शुद्धि हो अर्थात् कषाय-राग-द्वेष आदि से मुक्त होने का जागरूक प्रयत्न हो, अहिंसा हो, दयाभाव हो और अपने शरीर के कष्टों के प्रति उपेक्षा हो। लेकिन आचार-शुद्धि का मुख्य कारण सुगुरु की उपासना भी है,

अतएव विनय का विस्तार से वर्णन इसमें किया गया है। अन्त में सब का सार देकर सच्चा भिक्षु कैसा हो यह संक्षेप में वर्णित है।

इस सूत्र में दो चूलिका भी जोड़ी गई हैं। उनका उद्देश्य भिक्षु को अपने संयमी जीवन में दृढ़ रहने का उपदेश देना—यह है। अर्थात् इसमें गृहस्थ जीवन की हीनता और संयमी जीवन की उच्चता का प्रतिपादन अनिवार्य हो गया है।

इस प्रकार संयमी जीवन के अनेक प्रश्नों को लेकर इस ग्रन्थ में निरूपण होने से इसी सूत्र से नये भिक्षु का पठनक्रम शुरू होता है। इसे भिक्षु जीवन की प्रथम पाठ्य पुस्तक कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।"

प्राकृत भारती का प्रारम्भ से ही यह उद्देश्य रहा है कि प्राकृत भाषा में सन्दब्ध विशाल आगम साहित्य का स्वरूप, सारांश सर्व साधारण समझ सके। इसी दृष्टि से अकादमी डा. कमलचन्द जी सोगाणी, प्रोफेसर दर्शन विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर से चयनिकायें तैयार करवाकर प्रकाशित कर रही है। इस शृंखला में अभी तक डा. सोगाणी द्वारा चयनित—"आचारांग-चयनिका, समणसुत्तं चयनिका, वाक्पतिराज की लोकानुभूति"—प्रकाशित कर चुकी है। दशवैकालिक चयनिका प्रस्तुत है और उत्तराध्ययन एवं सूत्रकृतांग की चयनिकायें शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि हमारे इस प्रयत्न से प्रबुद्ध पाठकों में आगमों के अध्ययन के प्रति रुचि जागृत हुई। उन्होंने इसको सराहा, सहर्ष स्वीकार किया और चयनिकाओं का अध्ययन किया। इसी के फलस्वरूप अल्प समय में ही आचारांग-चयनिका का द्वितीय संस्करण भी अकादमी को प्रकाशित करना पड़ा।

आचारांग-चयनिका के समान इस चयनिका में भी दशवैकालिक सूत्र के विशाल कलेवर में से मणि-मुक्ताओं के समान वैशिष्ट्य पूर्ण केवल एक सौ गाथाओं का चयन है और साथ ही प्रत्येक सूत्र का व्याकरण की दृष्टि से शाब्दिक अनुवाद भी। व्याकरणिक विश्लेषण में प्राकृत व्याकरण को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक शब्द का मूल रूप, अर्थ और विभक्ति आदि का सरल परिचय भी दिया गया है। हमारा विश्वास है कि आगमों के अध्ययन को सार्वजनीन सुलभ बनाने से पाठक में जैन आगम/दर्शन/धर्म के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो सकेगी और समाज में एक नयी चेतना का उदय हो सकेगा, जो अभ्युदयकारी सिद्ध होगी।

डा. सोगाणी इस अकादमी के संस्थापन काल से ही अंग रहे हैं और अकादमी के विकास में प्रयत्नशील भी। उनके चयनिका-निर्माण के प्रशस्त प्रयत्न के प्रति अकादमी कृतज्ञ है। साथ ही "पुरोवचन" के लेखक श्री मधुसूदन जी अ. ढाँकी सह निदेशक, अमेरीकन इन्स्टीट्यूट आफ इंडियन स्टडीज, वाराणसी के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

पुस्तक की सुन्दर छपाई के लिये अकादमी फ्रैन्ड्स प्रिन्टर्स एवं स्टेशनर्स, जयपुर के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता है।

सुलतानमल जैन
अध्यक्ष
श्री जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
मेवानगर

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव
प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

पुरोवचन

जिन वर्धमान महावीर की उत्तरापथ की परम्परा में उनके गणधर-शिष्य सुधर्मा से चौथे पट्टधर हुए आर्य शय्यंभव वा स्वायम्भुव (प्राय:ईसा-पूर्व 375-300)। आगमिक व्याख्याकारों की ईस्वी छट्ठी शताब्दी से चली आयी परम्परा के अनुसार अत्यन्त प्रतिष्ठित आगम दशवैकालिक सूत्र के वे रचयिता थे। उन्होंने उसकी रचना अपनी गृहस्थ पर्याय के पुत्र एवं तत्पश्चात् स्वशिष्य बाल मुनि, अल्पायुषी "मनक" के उपदेशार्थ की थी। दशाश्रुतस्कन्ध (कल्पसूत्र) की स्थविरावलि का प्राचीनतम हिस्सा, जो आर्य फल्गुमित्र (ईस्वी 100-125) पर्यन्त आकर ही अटक जाता है, उसमें आर्य शय्यंभव के लिये जो 'मनक पिता" का उद्बोधन किया गया है वह संभवतः उपरकथित अनुश्रुति की ओर संकेत ही नहीं, अपितु एक तरह से समर्थन भी करता है।

वर्तमान में उपलब्ध दशवैकालिक सूत्र. यदि शोध दृष्टि से देखा जाय तो, भाषा एवं छन्दादि से और विशेष कर भीतरी वस्तु से निःशंक रूप से ईसा पूर्व की रचना है। इस रचना में जो "बाल मुनि" के लिये ही हो सकती हैं वे गाथाएं तो हमें पूरे प्रथम अध्ययन में, द्वितीय अध्ययन में कुछ, और शेष आठ अध्ययनों में इधर-उधर बिखरी हुई देखने में आती हैं। (इस विषय पर मैं अन्यत्र चर्चा कर रहा हूँ।) दशवैकालिक सूत्र का अधिकांश भाग तो प्रौढवय के मुनियों के लिये ही है, लेकिन वह हिस्सा है बहुत ही प्राचीन। और,

पाटलिपुत्र वाचना, (प्राय: ईसा पूर्व 300) के समय जो कुछ पुरातन पदों का संग्रह निश्चित हुआ होगा उसमें से कुछ (बौद्ध "थेरगाथा" "सुत्तनिपात' एवं "धम्मपद" की तरह) सूत्रकृतांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि प्राचीनतम आगमों के अन्तर्गत संकलित है। आर्य फल्गुमित्र के समय (लगभग ईस्वी 100) तक मूल संग्रह में कुछ पद्यों के स्थानांतर, स्खलन, विशृंखलन और कहीं-कहीं वर्ण-विकार या शब्द-विकृति तथा अध्ययनों में परिवर्तन भी हुआ होगा। आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में हुई माथुरी वाचना (प्राय: ईस्वी 350-353) के मध्य उसके जो प्रारूप और आंतरिक व्यवस्था निश्चित बनी होगी उसी का ही स्वरूप आज हमारे सामने उपस्थित दशवैकालिक सूत्र में है।

आचारांग (प्रथम श्रुत-स्कन्ध), सूत्रकृतांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन में (और ऋषि-भाषितानि में भी) जो प्राचीन पद्य हम देखते हैं वे निर्ग्रन्थ दर्शन की प्राचीनतम मान्यतायें, उस युग के दृष्टि-कोण, आदर्श, लक्ष्यों, और इन सबको ध्यान में रखते हुए निश्चित किया हुआ साधनामार्ग, आत्मसाधन एवं आचार-प्रणालिका के द्योतक हैं। साथ ही पश्चात् कालीन आगमों की भेद, प्रभेद, उपभेद, मूलभेद-उत्तर भेद की वैदुष्यलीला से प्रायश: सर्वथा मुक्त ही हैं। और, न उनमें नय-न्याय, प्रमाण-प्रमेय, आप्त-अनाप्त, एकान्त-अने-कान्त की दार्शनिक चतुराइओं का ढक्का-निनाद ही सुनाई पड़ता है। इनमें वर्णित कथन एकदम सीधे, सरल, सरस और साफ हैं। कथन का सारा ही ज़ोर आत्म-गुण के विकास पर ही दिया गया है, और वह भी संयम एवं सच्चरित्र के रास्ते से। जिस युग में यह आगम रचा गया था उस युग में प्राय: सब ही भारतीय मुख्य धर्म-विचार-धाराओं में इसी प्रकार का उपदेश दिया गया है, ऐसा दिखाई दे जाता है। इनमें जो कुछ भी कहा गया है वह भी सचोट, अंतर-

निष्पन्न और नित्य सांसारिक जीवन की अनुभूति में से लिया गया है। सब ही उपमायें एवं उदाहरण वास्तविक हैं, जो लोकभाषा एवं जनानुभव में से अनायास ही आये हैं । उस युग के मुनिजनों के विचार और चर्चा सम्बद्ध प्रचलित कविता-प्रवाह में से लेकर, यहाँ कुछ व्यवस्थित रूप में संकलित कर प्रस्तुत किये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

डा. कमलचन्द सोगानी जी ने आचारांग-चयनिका की तरह इस दशवैकालिक सूत्र-सरोवर में से भी उत्तमोत्तम पुंडरीक चुन कर एक प्रकार से सारग्राही और सुरभियुक्त पद्यकुसुमावलि सानुवाद प्रस्तुत की है। अनुवाद केवल शब्दशः न होते हुए पद्यों के अन्तरंग को प्रकट करने वाला है और इस हेतु उन्होंने बहुत परिश्रम भी किया है। चयनकार डा. सोगानी, प्राकृत भारती अकादमी के सचिव श्री देवेन्द्रराजजी मेहता एवं अकादमी के ही निदेशक महो. पंडित विनयसागर जी इस सार्थक प्रकाशन के यशःभागी हैं।

मधुसूदन ढांकी

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादों को चखता है तथा गंधों को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड़ हैं, तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं, मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश में वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत् का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओं के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओं से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओं की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत में उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं, जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुःखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारों, भावनाओं और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने

का अभ्यस्त होता है, अतः वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकांक्षाओं और आशाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिए जीएँ। उसकी निगाह में दूसरे मनुष्य वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं होते हैं। किन्तु, उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति में रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्त्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। पर, मनुष्य को यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकांश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए समान-भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उनका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिए करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिए चिंतन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्त्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। उसमें एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अब वस्तु-जगत में जीते

हुए भी मूल्य-जगत में जीने लगता है। उसका मूल्य-जगत में जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यों की खोज में संलग्न हो जाता है। वह मूल्यों के लिए ही जीता है और समाज में उनकी अनुभूति बढ़े इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक-दूसरा आयाम है।

दशवैकालिक में चेतना के इस दूसरे आयाम की सबल अभिव्यक्ति हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज की रचना करना है, जिसमें मनुष्यों एवं मनुष्येतर प्राणियों को मारना व उनको मरवाना दोनों ही समाप्त हो जाएँ (२२)। सभी प्राणियों में जीने की इच्छा इतनी बलवती होती है कि कोई भी प्राणी किसी भी स्थिति में मरना नहीं चाहता है (२३)। इसलिए किसी भी प्रकार का वध उचित नहीं कहा जा सकता है। दशवैकालिक ने हिंसा की पराकाष्ठा को ही दृष्टि में रख कर प्राणियों को न मारने व उन्हें न मरवाने की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित किया है। व्यक्तिगत स्तर पर हत्याएँ तथा राष्ट्रों के स्तर पर युद्ध मारने व मरवाने के ही व्यापक रूप हैं। सौन्दर्य प्रसाधन, आहार, आर्थिक विकास तथा वैज्ञानिक प्रयोगों के नाम पर मनुष्येतर प्राणियों को मारना व उन्हें मरवाना दशवैकालिक को मान्य नहीं है। वह अविकसित सामाजिक जीवन की विवशता हो सकती है, पर उपादेय नहीं कही जा सकती है। सामाजिक जीवन कुछ इस प्रकार का होता है कि समाज में व्यक्तिगत स्तर पर या समूह के स्तर पर कई बार संघर्ष की स्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं। इन संघर्षों को मिटाने के लिए ऐसे रास्ते खोजे जाने चाहिए जहाँ जीवन-लीला समाप्त करने वाली पद्धतियों का ही अन्त हो जाए। मारने व मरवाने के साधन-रूप में आणविक और अणाणविक हथियारों पर होने वाले खर्च को यदि गरीबी, भुखमरी, रोग और अशिक्षा को मिटाने के लिए लगा दिया

जाए तो मानव जाति जीवन में उच्च मूल्यों का साक्षात्कार कर शाश्वत सुख की ओर बढ़ सकती है। अत: दशवैकालिक का शिक्षण है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्राणी को न मारे और न ही उसे मरवाये (२३)। सब प्राणियों के प्रति करुणा-भाव प्रदर्शित करने की यह शैली महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक आयामों को अपने में समेटे हुए है (२१)। दशवैकालिक के अनुसार यह अहिंसा है (२१)। व्यक्तिगत एवं सामाजिक (राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय) स्तर पर ग्रहण किया गया यह अहिंसा-व्रत व्यक्ति एवं समाज की काया पलट कर सकता है।

सब प्राणियों के प्रति करुणा की अनुभूति का आधार होता है, उनमें स्व-तुल्य आत्मा का भान होना (७, ८)। प्राणियों की आत्म-तुल्यता का ज्ञान अहिंसा की आधारशिला है। इस संवेदन-शीलता के विकास के साथ कि 'सब प्राणियों का सुख-दु:ख अपने समान होता है' मनुष्य हिंसा के मार्ग को छोड़ देता है और वह स्व-पर हित को समझ लेता है (८)।

'सब प्राणियों के प्रति करुणा-भाव' (२१) की साधना के लिए हिंसा से दूर होना तथा हिंसा से दूर होने के लिए वस्तुओं के प्रति अनासक्ति का अभ्यास आवश्यक है। अत: दशवैकालिक का कथन है कि अहिंसा, संयम और तप धर्म है (१)। प्राणियों के प्रति करुणा-भाव अहिंसा है; हिंसा से दूर रहना संयम है; और वस्तुओं के प्रति अनासक्ति का अभ्यास करना तप है। इस तरह से संयम और तप अहिंसा के साधन हैं। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस सूत्र (१) में साध्य-साधन-रूप पूर्ण जीवन अभिव्यक्त है। इसीलिए जो धर्म अहिंसा, संयम और तप को अपने में गूँथे हुए है, वह ही प्राणियों का कल्याण कर सकता है। इसी से मनुष्य स्व-पर

के विकास हेतु समर्थ होता है (४७)। स्व-अधीन भोगों के प्रति अनासक्त होने वाला ही त्यागी-तपस्वी कहलाता है (२)।

दशवैकालिक में ५७५ सूत्र हैं, जो दस अध्ययनों तथा दो चूलिकाओं (परिशिष्टों) में विभक्त हैं। इनमें सामाजिक-नैतिक व्यवहार तथा आध्यात्मिक विकास के सूत्र वर्णित हैं। इसमें साधना-मय जीवन-पद्धति का विशद कथन है। यहाँ आध्यात्मिक गुरु का महत्त्व विवेचित है। अहंकार-रहितता (विनय) को धर्म (शान्ति) का मूल कहा गया है। अहंकारिता अशान्ति की जनक मानी गयी है। पूज्यता और साधुता के जीवन-मूल्य इसमें प्रतिपादित हैं। यहाँ निःस्वार्थ जीवन की दुर्लभता को इंगित किया गया है। सामान्य क्रियाओं को भी जागरूकतापूर्वक करने का निर्देशन सूत्रों से प्राप्त है। चार कषायों—क्रोध, मान, माया और लोभ को अनिष्टकर कहा गया है। ध्यान, स्वाध्याय और अनासक्तता का महत्त्व प्रदर्शित है। जीव-अजीव की प्रकृति को समझने के द्वारा ही साम्यावस्था की प्राप्ति बताई गई है। वचन-शुद्धि पर बल दिया गया है।

दशवैकालिक के इन ५७५ सूत्रों में से ही हमने १०० सूत्रों का चयन 'दशवैकालिक-चयनिका' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। इस चयन का उद्देश्य पाठकों के समक्ष दशवैकालिक के उन कुछ सूत्रों को प्रस्तुत करना है, जो मनुष्यों में अहिंसा, संयम, तप, स्वाध्याय, ध्यान, अनासक्तता, जागरूकता, विनय, साधुता आदि की मूल्यात्मक भावना को दृढ़ कर सकें, जिससे उनमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की चेतना सघन बन सके। अब हम इस चयनिका की विषय-वस्तु की चर्चा करेंगे :

जीव-अजीव-विवेक और उसका फल :

मनुष्य केवल शरीर नहीं है। यह शरीर सीमित, नश्वर और

जड़ है। बहुत गहराई से सोचने, विचारने और अनुभव करने पर यह प्रतीत होता है कि मनुष्य में कुछ ऐसा भी है जो असीमित, अनश्वर और चेतन है। इस तरह से मनुष्य सीमित और असीमित का, नश्वर और अनश्वर का तथा जड़ और चेतन का मिला-जुला रूप है। इस मिले-जुले रूप के कारण ही सुख-दुःखात्मक अवस्था होती है। इस सुख-दुःखात्मक अवस्था के कारण ही मनुष्य इस जगत में अपने से भिन्न दूसरे प्राणियों को पहिचानने लगता है (७)। सामान्यतया ऐसा होता है कि मनुष्य अपने सुख-दुःख को तो समझ लेता है, पर संवेदनशीलता के अभाव में दूसरे प्राणियों की सुख-दुःखात्मक अवस्था को नहीं समझ पाता है। अतः दशवैकालिक का शिक्षण है कि जीवन में अहिंसा के विकास के लिए यह आवश्यक है कि हम दूसरे प्राणियों को आत्म-तुल्य समझें। दूसरे प्राणियों के सुख-दुःखात्मक अस्तित्व का भान होना ही 'करुणा' उत्पन्न होने की पूर्व शर्त है (८)। यहाँ यह समझना चाहिए कि करुणा की उत्पत्ति मनुष्य के भावात्मक विकास की भूमिका में होती है। किन्तु, ज्यों ज्यों मनुष्य में अवलोकन-शक्ति और चिन्तनशीलता का विकास होता है, त्यों-त्यों वह मनुष्यों की तथा मनुष्येतर प्राणियों की विभिन्न सुख-दुःखात्मक अवस्थाओं के समाजातीत सूक्ष्म कारण को समझने का प्रयास करता है। यह सच है कि सामाजिक व्यवस्थाओं के बदलने तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों से प्राणियों की सुख-दुःखात्मक अवस्थाएँ बदली जा सकती हैं, लेकिन यह हो सकता है कि बाहर सब कुछ ठीक हो, फिर भी मनुष्य अशान्ति, भय, शोक आदि अनुभव करे। इस दुःखात्मक अवस्था का कारण अन्तरंग है। यह निश्चित है कि यह कारण अन्तरतम चेतना नहीं हो सकती है। यह मानना युक्ति-युक्त लगता है कि जिन सूक्ष्मताओं से यह अवस्था उत्पन्न होती है, वह पूर्व में अर्जित 'कर्म' है जो अजीव है, अचेतन है। इस तरह से जीव चेतन है, 'कर्म' अचेतन है, अजीव है। इनका सम्बन्ध

कैसे हुआ ? यहाँ यह विचारना अभीष्ट नहीं है। किन्तु हमारा या किसी भी प्राणी का संसार में पदार्पण चेतना की शक्तियों का सीमितीकरण है, अर्थात् चेतना या जीव का कर्म-युक्त होना है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि जब तक हम चेतना या जीव की शक्तियों को तथा सीमितीकरण के कारण अजीव या कर्म को नहीं समझेंगे, तब तक हम चेतन-शक्ति के विकास की ओर उन्मुख नहीं हो सकते (१०)। जीव (चेतन) और अजीव (कर्म) को समझे बिना हमारे यह समझ में आना कठिन है कि संयमित जीवन का क्या उद्देश्य है ? उसका क्या महत्त्व है ? यह सच है कि जो मनुष्य चेतना या जीव की शक्तियों तथा कर्म या अजीव के प्रभाव को समझने की ओर चल पड़ा है, वह कर्मों के प्रभाव को समाप्त करने के लिए चेतन-शक्ति के विकास की ओर चल पड़ता है। अतः संयम की ओर झुक जाता है (११)। जब मनुष्य कर्मों से उत्पन्न विभिन्न अवस्थाओं को समझने लगता है, तो जीवों की विभिन्न स्थितियाँ समझ में आने लगती हैं (१२)। इसका परिणाम यह होता है कि पशुवत् प्रवृत्तियों को तथा भोगात्मक वृत्तियों को वह छोड़ देता है; साथ में आसक्ति को तथा आसक्ति के कारण जो बाह्य संयोग रहते हैं, उनसे भी परे होने लगता है (१५)। अनासक्त भाव की ओर बढ़ते जाने से कर्म निस्तेज होकर समाप्त होने लगते हैं, तो अनन्त ज्ञान, साम्यावस्था आदि गुण प्राप्त हो जाते हैं (१६ से २०)। यही जीव-अजीव (कर्म) के विवेक से उत्पन्न फल है। यही आध्यात्मिक मूल्यों की साधना का परिणाम है। जब कोई व्यक्ति आसक्ति के प्रभाव से भोगात्मक वृत्ति में रम जाता है और आध्यात्मिक मूल्यों को छोड़ देता है, तो यह कहना उचित है कि वह मूर्च्छित व्यक्ति है और अपने उज्ज्वल भविष्य को धूमिल कर रहा है (९४)। दशवैकालिक की यह धारणा बड़ी मनोवैज्ञानिक है कि मनुष्य मंगलप्रद और अनिष्टकर दोनों को ही सुनकर समझता है (९)। संभवतया कहने

का अभिप्राय यह है कि आध्यात्मिक व्यक्तियों का संसर्ग और उनसे जीवन की गहराइयों का श्रवण चित्त पर स्थायी प्रभाव डालना है और वह व्यक्तित्व-परिवर्तन का प्रेरक बन जाता है।

साधना के आयाम :

आसक्ति जीवन को संकुचित करती है; हिंसा जीवन को मलीन बनाती है; कषायें चेतना की शक्ति को प्रस्फुटित नहीं होने देती हैं (३५)। साधना जीवन को सार्वलौकिक बनाती है, निर्मल करती है और चेतना की शक्तियों को प्रकाश में लाती है। जीवन में साधना के इस महत्त्व के कारण ही दशवैकालिक ने कहा है कि व्यक्ति शीघ्र ही सिद्धि-मार्ग को समझे और भोग से निवृत्त होवे, क्योंकि जीवन अनित्य है और आयु सीमित है (३३)। इसलिए जब तक किसी को बुढ़ापा नहीं सताता है, जब तक किसी को रोग नहीं होता है, जब तक किसी की इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती है, तब तक ही उसे साधना में उतर जाना चाहिए (३४)।

उचित साधना से ही सर्वोत्तम की प्राप्ति सम्भव है। इससे ही इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण होता है (२८, ४१)। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि साधना के मार्ग पर चला हुआ व्यक्ति ही हमें प्रशस्त बोध दे सकता है। अतः दशवैकालिक का कथन है कि व्यक्ति मूल्यों के साधक का आश्रय ले और उससे ही हित-साधन की पूछताछ करे (४१)। इसके साथ साधना का ज्ञान भी साधना-मय जीवन की आवश्यक पूर्व शर्त है। इस ज्ञान के लिए आलस्य को त्यागकर स्वाध्याय में लीन रहना जरूरी है (४०)। स्वाध्याय में लगा हुआ व्यक्ति साधनामय जीवन से चेतन-शक्तियों का विकास कर लेता है और दूसरों को भी इस मार्ग की ओर चलाने में समर्थ हो जाता है (४७)। दशवैकालिक का स्पष्ट विश्वास है कि जो

व्यक्ति नैतिक-आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करके श्रुत-साधना में संलग्न होता है, वह मूल्यात्मक ज्ञान को प्राप्त करता है तथा एकाग्र-चित्त वाला बन जाता है। वह स्वयं मूल्यों में जमा हुआ रहता है और दूसरों को भी मूल्यों में जमाता है।

साधना के लिए संकल्प की दृढ़ता आवश्यक है। 'देह को त्याग दूँगा, किन्तु नैतिकता के अनुशासन को नहीं' ऐसी दृढ़ता वाला व्यक्ति ही इन्द्रिय-विषयों से विचलित नहीं किया जा सकता है (९७)। साधक के जीवन में मूल्यों का विकास समाज में उसके व्य-वहार को मृदु, आकर्षक एवं अनुकरणीय बना देता है। वह समझता है कि क्रोध प्रेम को नष्ट करता है, अहंकार विनय का नाशक होता है, कपट मित्रों को दूर हटाता है और लोभ सब गुणों का विनाशक होता है (३६)। इसलिए वह क्षमा की साधना से क्रोध को नष्ट करता है, विनय की साधना से अहंकार को जीतता है, सरलता की साधना से कपट को तथा सन्तोष की साधना से लोभ को जीतता है (३७)। दशवैकालिक का शिक्षण है कि साधक दूसरों का अप-मान न करे, अपने को ऊँचा न दिखाए, ज्ञान का लाभ होने पर गर्व न करे, जाति का, अनासक्त होने का तथा बुद्धि का गर्व न करे(२९)। ज्ञानपूर्वक तथा अज्ञानपूर्वक अनुचित कर्म हो जाए तो वह अपने को तुरन्त रोके (९८) और उसको दूसरी बार न करे (३०)। वह सदा पवित्र बने, दोष को न छिपाए, प्रकट मनःस्थिति में रहे, इन्द्रियों को जीते तथा अनासक्त बने (३१)। मूल्यों का साधक ऐसी भाषा न बोले जिससे दूसरे को मानसिक पीड़ा हो और वह शीघ्र क्रोध करने लगे (४२)। वह सदैव नपी-तुली बात कहे (४३)। असत्य वचन से वह दूर रहे (२४)। ध्यान रखे कि दुर्वचन वैरकारक होते हैं (७५)।

साधक अन्तर्यात्रा पर चलता है। स्वाध्याय के बल पर वह अपने में कुछ गुण विकसित करने में सफल हो जाता है। किन्तु आध्यात्मिक ऊँचाइयों को जीने के लिए गुरु की आवश्यकता है। साधारणतया कोई भी बिना आध्यात्मिक गुरु के पार नहीं पहुँच सकता है। जो कोई भी गुरु के बिना आध्यात्मिक रहस्यों में उतरने का प्रयास करता है, वह कई प्रकार के खतरों को जन्म दे देता है। गुरु के होने पर गुरु की आज्ञानुसार चलना ही अन्तर्यात्रा को सुगम बनाता है (७२)। गुरु की अवज्ञा कई समस्याओं को उत्पन्न कर देती है और साधक परम-शान्ति के मार्ग से च्युत हो जाता है (५२, ५४)। अतः आध्यात्मिक सुख का इच्छुक साधक गुरु-प्रसाद के लिए प्रयास करे तथा उनकी सेवा में संलग्न रहे (५५, ६०)। सदैव यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि गुरु का किसी प्रकार का अपमान न हो जाए। गुरु का अपमान अहितकारक ही होता है (५१, ५३)। दशवैकालिक इस बात पर खेद व्यक्त करता है कि कई साधक अहंकार के कारण, कपट और प्रमाद के कारण गुरु के समीप होते हुए भी आध्यात्मिक आचरण में नहीं लगते हैं (४६)। यहाँ यह समझना चाहिए कि व्यक्ति जिनके पास अध्यात्म की बातों को सीखता है, उनके सामने विनम्र रहना और उनका सदैव सम्मान करना उच्च कोटि का आचरण है (५६)।

साधना में विकास विनय से होता है। इसीलिए इसे धर्म का मूल कहा गया है (६२)। विनय अहंकार-रहितता है। अहंकार मानवीय सम्बन्धों को गड़बड़ा देता है। अहंकारी में ग्रहणशीलता का अभाव होता है। विनयवान सबका प्रिय बन जाता है। वह शीघ्र ही अपने में ज्ञान आदि गुणों को विकसित करने में सफल हो जाता है। संसार-मार्ग में तथा अध्यात्म-मार्ग में सभी उसको चाहने लगते हैं। विनीत मनुष्य ही यश और वैभव प्राप्त करने के अधिकारी होते

इस पुस्तक के अनुवाद एवं इसकी प्रस्तावना को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए। डॉ. उदयचन्द जैन एवं डॉ. हुकमचन्द जैन (जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय) तथा डॉ. सुभाष कोठारी व श्री सुरेश सिसोदिया (आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर) के सहयोग के लिए आभारी हूँ।

मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमला देवी सोगाणी ने इस पुस्तक की गाथाओं का मूल-ग्रन्थ से सहर्ष मिलान किया है तथा मेरे भतीजे श्री संगम सोगाणी ने प्रूफ-संशोधन का कार्य रुचिपूर्वक किया है, अतः मैं दोनों का आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराजजी मेहता तथा संयुक्त सचिव एवं निदेशक महोपाध्याय श्री विनयसागर जी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

कमलचन्द सोगाणी

प्रोफेसर
दर्शन विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)
२५.१.८७

दशवैकालिक-चयनिका

दशवैकालिक-चयनिका

1. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ।।

2. जे य कंते पिए भोए लद्धे विप्पिट्ठि कुव्वई ।
साहीणे चयई भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई ।।

3. समाए पेहाए परिव्वयंतो,
सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नो वि अहं पि तीसे,
इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।

4. आयावयाही चय सोगुमल्लं,
कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं,
एवं सुही होहिसि संपराए ।।

दशवैकालिक-चयनिका

1. अहिंसा, संयम (और) तप धर्म (है)। (इससे ही) सर्वोच्च कल्याण (होता है)। जिसका मन सदा धर्म में (लीन है), उस (मनुष्य) को देव भी नमस्कार करते हैं।

2. जो प्राप्त किए गए मनोहर और प्रिय भोगों को पीठ करता है (दिखाता है) (तथा) स्व-अधीन भोगों को छोड़ता है, वही त्यागी है। इस प्रकार कहा जाता है।

3. (ऐसा होता है कि) राग-द्वेष रहित चिन्तन में भ्रमण करता हुआ मन कभी (सम अवस्था से) बाहर (विषमता में) चला जाता है। (उस समय व्यक्ति यह विचारे कि) वह (विषमता) मेरी नहीं (है), निश्चय ही मैं भी उसका नहीं (हूँ)। इस प्रकार उस (विषमता) से (वह) आसक्ति को हटावे।

4. (तू) (अपने को) तपा; अति-कोमलता को छोड़; इच्छाओं को वश में कर; (इससे) निश्चय ही दुःख पार किए गए (हैं)। (तू) द्वेष को नष्ट कर; राग को हटा; इस प्रकार तू संसार में सुखी होगा।

5. कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कहमासे ? कहं सए ? ।
कहं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधई ? ।।

6. जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधई ।।

7. सव्वभूयऽप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावं कम्मं न बंधई ।।

8. पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।
अन्नाणी किं काही ? किं वा नाहिइ छेय पावगं ? ।।

9. सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणई सोच्चा जं छेयं तं समायरे ।।

10. जो जीवे वि न याणति अजीवे वि न याणति ।
जीवाऽजीवे अयाणंतो कह सो नाहिइ संजमं ? ।।

5. (व्यक्ति) कैसे चले ? कैसे खड़ा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे सोए ? किस प्रकार खाता हुआ और बोलता हुआ (व्यक्ति) अशुभ कर्म को नहीं बांधता है ?

6. (व्यक्ति) जागरूकतापूर्वक चले, जागरूकतापूर्वक खड़ा रहे, जागरूकतापूर्वक बैठे, जागरूकतापूर्वक सोए (ऐसा करता हुआ तथा) जागरूकतापूर्वक भोजन करता हुआ (और) बोलता हुआ (व्यक्ति) अशुभ कर्म को नहीं बांधता है ।

7. सब प्राणियों का (सुख-दुःख) अपने समान (होने) के कारण (जो व्यक्ति) (उन) प्राणियों में (स्व-तुल्य आत्मा का) अच्छी तरह से दर्शन करने वाला (होता है), (वह) रुके हुए आश्रव के कारण (तथा) आत्म-नियन्त्रित होने के कारण अशुभ कर्म को नहीं बांधता है ।

8. सर्वप्रथम (प्राणियों की आत्म-तुल्यता का) ज्ञान (करो); बाद में (ही) (उनके प्रति) करुणा (होती है) । इस प्रकार प्रत्येक (ही) संयत (मनुष्य) आचरण करता है । (प्राणियों की आत्म-तुल्यता के विषय में) अज्ञानी (व्यक्ति) क्या करेगा ? (वह) हित (और) अहित को कैसे जानेगा ?

9. (मनुष्य) मंगलप्रद को सुनकर समझता है; (वह) अनिष्टकर को (भी) सुनकर (ही) समझता है; (वह) दोनों (मंगलप्रद और अनिष्टकर) को भी सुनकर (ही) समझता है । (इसलिए) (इन दोनों में से) जो मंगलप्रद (है), (वह) उसका आचरण करे ।

10. जो जीवों को भी नहीं समझता है, अजीवों को भी नहीं समझता है, वह जीवों और अजीवों को नहीं समझता हुआ संयम को कैसे समझेगा ?

11. जो जीवे वि वियाणति अजीवे वि वियाणति ।
जीवाऽजीवे वियाणंतो सो हु नाहिइ संजमं ।।

12 जया जीवमजीवे य दो वि एए वियाणई ।
तया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणई ।।

13. जया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणई ।
तया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणई ।।

14. जया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणई ।
तया निव्विदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे ।।

15. जया निव्विदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं सऽब्भितरबाहिरं ।।

16. जया संवरमुक्कट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसं कडं ।।

17. जया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छई ।।

11. जो जीवों का भी समझता है, अजीवों को भी समझता है, (वह) जीवों और अजीवों को समझता हुआ संयम को निश्चय ही समझेगा।

12. जव (कोई) जीव-समूह और अजीवों—इन दोनों को ही समझता है, तव (वह) सव जीवों की अनेक प्रकार की गति को समझ लेता है।

13. जव (कोई) सव जीवों की अनेक प्रकार की गति को समझता है, तव (वह) पुण्य और पाप को (तथा) वंध और मोक्ष को समझ लेता है।

14. जव (कोई) पुण्य और पाप को (तथा) वंध और मोक्ष को समझता है, तव (वह) देव-सम्वन्धी तथा मनुष्य-सम्वन्धी भोगों को अच्छी तरह समझ लेता है।

15. जव (कोई) देव-सम्वन्धी तथा मनुष्य-सम्वन्धी भोगों को अच्छी तरह समझ लेता है, तव (वह) (आत्म-भाव की ओर जाने के लिए) निज के (राग-द्वेषात्मक) भीतरी संयोग को (और) (सांसारिक) वाह्य (संयोग) को छोड़ देता है।

16. जव (कोई) उत्कृष्ट आत्म-नियन्त्रण (और) सर्वोत्तम चरित्र का पालन करता है, तव (वह) धारण किए हुए अज्ञानरूपी मैल को (तथा) (धारण की हुई) कर्मरूपी धूल को हटा देता है।

17. जव (कोई) धारण किए हुए अज्ञानरूपी मैल को (तथा) (धारण की हुई) कर्मरूपी धूल को हटा देता है, तव (वह) सर्वव्यापी ज्ञान और दर्शन को प्राप्त कर लेता है।

18. जया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छई ।
तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली ।।

19. जया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जई ।।

20. जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जई ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरम्रो ।।

21. तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो ।।

22. जावंति लोए पाणा तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा न हणे नो वि घायए ।।

23. सव्वजीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति णं ।।

24. अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए ।।

18. जव (कोई) सर्वव्यापी ज्ञान (और) दर्शन को प्राप्त कर लेता है, तव (वह) महामानव सर्वज्ञ (हो जाता है) और (संपूर्ण) लोक-अलोक को जान लेता है।

19. जव (कोई) सर्वज्ञ महामानव लोक (और) अलोक को जान लेता है, तव (वह) योगों (मन-वचन-काय की क्रियाओं) का निरोध करके निश्चल साम्यावस्था प्राप्त कर लेता है।

20. जव (कोई) योगों (मन-वचन-काय की क्रियाओं) का निरोध करके निश्चल साम्यावस्था को प्राप्त कर लेता है, तव (वह) शुद्ध (आत्मा) (शेष) कर्म (समूह) को नष्ट करके सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

21. वहाँ पर (व्रतों आदि में) (अहिंसा का) यह सर्वप्रथम स्थान महावीर के द्वारा उपदिष्ट (है)। (महावीर के द्वारा) अहिंसा सूक्ष्म रूप से जानी गई है। (उसका सार है)—सव प्राणियों के प्रति करुणाभाव।

22. लोक में जितने भी प्राणी (है) : त्रस अथवा स्थावर (कोई भी) जानते हुए या (प्रमाद से) न जानते हुए उनको न मारे, न ही मरवाए।

23. सव ही जीव जीने की इच्छा करते हैं, मरने की नहीं; इसलिए संयत (व्यक्ति) उस पीड़ादायक प्राणवध का परित्याग करते हैं।

24. (मनुष्य) निज के लिए या दूसरे के लिए क्रोध से या भले ही भय से पीड़ा कारक (वचन) (और) असत्य (वचन) (स्वयं) न वोले, न ही दूसरे से वुलवाए।

25. मुसावाओ य लोगम्मि सव्वसाहूहिं गरहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मोसं विवज्जए ।।

26. चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंतसोहणमेत्तं पि ओग्गहं सि अजाइया ।।

27. न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ।।

28. परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए
चउक्कसायावगए अणिस्सिए ।
स निद्धुणे धुण्णमलं पुरेकडं
आराहए लोगमिणं तहा परं ।।

29. न बाहिरं परिभवे अत्ताणं न समुक्कसे ।
सुयलाभे न मज्जेज्जा जच्चा तवसि बुद्धिए ।।

25. निस्संदेह जगत में झूठ बोलना सब साधुओं (पवित्रात्माओं) द्वारा निन्दित (है)। (झूठ बोलने से) मनुष्यों में (झूठ बोलने वाले के प्रति) बिल्कुल भरोसा नहीं (रहता है)। इसलिए (व्यक्ति) झूठ बोलने को छोड़े।

26. बहुत या भले ही थोड़ी सचित्त या अचित्त (दूसरों की) (वस्तु) को (तथा) दाँत स्वच्छ करने वाली (सींक) के बराबर भी (अन्य की) (वस्तु) को बिना मांगकर (तू) (यदि) लेने में (तत्पर) है, (तो अनुचित है)।

27. (प्राणियों के) उपकारी महावीर के द्वारा वह (संयम और लज्जा की रक्षा के लिए आवश्यक) (वस्तु) परिग्रह नहीं कही गई (है)। मूर्च्छा परिग्रह कही गई (है)। इस प्रकार (यह) महर्षि, (महावीर) द्वारा कहा गया है।

28. (जो) सोच-समझकर बोलने वाला (है), (जिसका) इन्द्रिय-समूह अत्यन्त शान्त (है), (जिसके द्वारा) चारों कषाएँ नष्ट कर दी गई (हैं), (जो) आसक्ति-रहित (है), वह पूर्व में किए हुए पाप रूपी मैल को, दूर कर देता है, (और) (इस तरह से) (वह) इस लोक और पर (लोक) की भक्ति करता है अर्थात् अपने इस लोक और परलोक को सुधारता है।

29. (व्यक्ति) बाह्य (दूसरे) का तिरस्कार न करे, अपने को ऊँचा न दिखाए, ज्ञान का लाभ होने पर गर्व न करे, (तथा) जाति का, तपस्वी (होने) का (और) बुद्धि का (गर्व न करे)।

30. से जाणमजाणं वा कट्टु आहम्मियं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं वीयं तं न समायरे ।।

31. अणायारं परक्कम्म नेव गूहे, न निण्हवे ।
सुई सया वियडभावे असंसत्ते जिइंदिए ।।

32. अमोहं वयणं कुज्जा आयरियस्स महप्पणो ।
तं परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए ।।

33. अधुवं जीवियं नच्चा सिद्धिमग्गं वियाणिया ।
विणियट्टेज्ज भोगेसु, आउं परिमियमप्पणो ।।

34. जरा जाव न पीलेई वाही जाव न वड्ढई ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे ।।

35. कोहं माणं च मायं च लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ इच्छंतो हियमप्पणो ।।

36. कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ।।

30. ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक अनुचित कर्म को करके (व्यक्ति) अपने को तुरन्त रोके (और फिर) वह उसको दूसरी बार न करे।

31. दुराचरण का सेवन करके (मनुष्य) (उसको) कभी न छिपाए (तथा) न (ही) (उसको) मना करे। (वह) सदा पवित्र (बने), प्रकट मन:स्थिति में (रहे), अनासक्त (तथा) जितेन्द्रिए (होवे)।

32. (व्यक्ति या समाज) महान् आत्मा, आचार्य के वचन को सफल करे। उस वचन को स्वीकार करके कार्य द्वारा (उसका) सम्पादन करे।

33. (व्यक्ति) जीवन को अनित्य जानकर निज की आयु को सीमित (जाने)। अत: सिद्धि-मार्ग को समझकर (वह) भोगों से निवृत्त होवे।

34. जब तक (किसी को) बुढ़ापा नहीं सताता है, जब तक (किसी को) रोग नहीं बढ़ता है, जब तक (किसी की) इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती है, तब तक (उसको) धर्म (आध्यात्मिकता) का आचरण कर लेना चाहिए।

35. आत्मा के हित को चाहता हुआ (मनुष्य) पाप को बढ़ाने वाले (इन) चार दोषों को—क्रोध और मान को, माया और लोभ को—निश्चय ही बाहर निकाले।

36. क्रोध प्रेम को नष्ट करता है, अहंकार विनय का नाशक (होता है), कपट मित्रों को दूर हटाता है, (और) लोभ सब (गुणों का) विनाशक (होता है)।

37. उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।

38. कोहो य माणो य अणिग्गहीया
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया
सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ।।

39. राइणिएसु विणयं पउंजे
धुवसीलयं सययं न हावएज्जा ।
कुम्मो व्व अल्लीण-पलीणगुत्तो
परक्कमेज्जा तव-संजमम्मि ।।

40. निद्दं च न बहुमन्नेज्जा, सप्पहासं विवज्जए ।
मिहोकहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ।।

41. इहलोग-पारत्तहियं जेणं गच्छइ सोग्गइं ।
बहुसुयं पज्जुवासेज्जा, पुच्छेज्जऽत्थविणिच्छयं ।।

42. अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासेज्जा भासं अहियगामिणिं ।।

37. क्षमा से क्रोध को नष्ट करे, विनय से मान को जीते, सरलता से कपट को तथा संतोष से लोभ को जीते ।

38. क्रोध और मान, माया और लोभ—ये चार अनिष्टकर कषाएँ, (जो) जन्म-जात (हैं) (और) (वर्तमान जीवन में) बढ़ती हुई (हैं), पुनर्जन्म के आधारों को सींचती हैं ।

39. (व्यक्ति) संयमियों के प्रति विनय करे, अचल (आत्म)—स्वभाव का सदा (कभी भी) तिरस्कार न करे, तप (और) संयम में प्रवृत्ति करे (तथा) कछुवे की तरह (स्व में) (कभी) थोड़ा लीन (और) (कभी) अति लीन प्रवृत्तिवाला (बने) ।

40. (संयमी मनुष्य) निद्रा का अत्यधिक आदर बिल्कुल न करे, हँसी-ठट्ठे को छोड़े । गुप्त रूप से (भी) (अशुभ) कथाओं में न टिके । स्वाध्याय में सदा लीन (रहे) ।

41. जिसके द्वारा इस लोक में (व्यक्ति का) पारलौकिक कल्याण (होता है) (तथा) (वह) (यहाँ) अच्छी अवस्था प्राप्त करता है, (उसको जानने के लिए) (व्यक्ति) (मूल्यों के) विद्वान् (साधक) का आश्रय ले (तथा) (उससे) (हित) साधन के परिज्ञान की पूछताछ करे ।

42. जिससे मानसिक पीड़ा हो और दूसरा शीघ्र क्रोध करने लगे, उस अहित करने वाली भाषा को (व्यक्ति) बिल्कुल न बोले ।

43. दिट्ठं मियं असंदिद्धं पडिपुण्णं वियं जियं ।
अयंपिर-मणुव्विग्गं भासं निसिर अत्तवं ।।

44. विसएसु मणुण्णेसुं पेमं नाभिनिवेसए ।
अणिच्चं तेसिं विण्णाय परिणामं पोग्गलाण य ।।

45. पोग्गलाण परीणामं तेसिं णच्चा जहा तहा ।
विणीयतण्हो विहरे सीईभूएण अप्पणा ।।

46. जाए सद्धाए निक्खंतो परियायट्ठाणमुत्तमं ।
तमेव अणुपालेज्जा गुणे आयरियसम्मए ।।

47. तवं चिमं संजमजोगयं च
सज्झायजोगं च सया अहिट्ठए ।
सूरे व सेणाए समत्तमाउहे
अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ।।

48. सज्झाय-सज्झाणरयस्स ताइणो
अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झई जं से मलं पुरेकडं
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ।।

43. हे आत्मवान् ! (तू) नपी-तुली, निश्चित, अखण्ड, व्यक्त* (स्पष्ट), परिचित*, वाचालता-रहित खेद-रहित, (तथा) देखी गई (बात) को (प्रकट करने वाली) भाषा को बोल ।

44. (इन्द्रियादि विषयों के) उन पुद्गलों के परिवर्तन को निस्संदेह अनित्य जानकर, (व्यक्ति) मनोज्ञ विषयों में आसक्ति को न बैठाए ।

45. उन पुद्गलों के परिणमन को जैसा (है), वैसा जानकर (व्यक्ति) (जिसके द्वारा) लालसा दूर की गई (है), ठंडी (तनाव-मुक्त) हुई आत्मा में रहे ।

46. जिस श्रद्धा से (कोई) (आत्म)—गुणों की सर्वोच्च प्राप्ति के लिए (घर से) बाहर निकला (है), उस ही (श्रद्धा) का (तथा) आचार्य के द्वारा स्वीकृत गुणों का (वह) रक्षण करे ।

47. (जो) सदा संयम में चेष्टा करता है, (सदा) स्वाध्याय में चेष्टा (करता है) तथा (सदा) इस (उपदिष्ट) तप को (करता है), (वह) निज (के विकास) के लिए समर्थ होता है (तथा) दूसरों (के विकास) के लिए (भी) समर्थ होता है जैसे कि (शत्रु की) सेना से (घिरा हुआ) (वह) वीर, (जिसके द्वारा) समस्त हथियार (इकट्ठे किए हुए हैं), (निज की व दूसरों की रक्षा के लिए समर्थ होता है) ।

48. स्वाध्याय और सद्-ध्यान में लीन (व्यक्ति) का, उपकारी का, निष्पाप मन (वाले) का, तप में लीन (व्यक्ति) का— इन सबका पूर्व में किया हुआ जो भी दोष (है), (वह) शुद्ध हो जाता है, जैसे कि अग्नि के द्वारा झकझोरे हुए सोने का मैल (शुद्ध हो जाता है) ।

*व्याकरणिक विश्लेषण देखें । दसवेयालिय (सं. मुनि नथमल पृ. 411)

49. थंभा व कोहा व मय-प्पमाया
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ।
सो चेव ऊ तस्स अभूइभावो
फलं व कीयस्स वहाय होइ ।।

50. जे यावि मंदे त्ति गुरुं विइत्ता
डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा ।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा
करेंति आसायण ते गुरूणं ।।

51. जो पावगं जलियमवक्कमेज्जा
आसीविसं वा वि हु कोवएज्जा ।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी
एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ।।

52. सिया हु से पावय नो डहेज्जा
आसीविसो वा कुविओ न भक्खे ।
सिया विसं हालहलं न मारे
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ।।

49. (जो) अहंकार के कारण, क्रोध के कारण तथा कपट (और) प्रमाद (मूर्च्छा) के कारण गुरु के समीप में भी (यदि) सच्चरित्र को नहीं सीखता है, (तो), जानो, वह (बात) उसके लिए ही दुर्भाग्य की अवस्था (है), जैसे कि बाँस का फल (उसी की) समाप्ति के लिए होता है।

50. जो (लोग) भी (आध्यात्मिक) गुरु को ऐसा जानकर (कि) (ये) (शब्द अभिव्यक्ति में) धीमें हैं, (ये) (उम्र में) छोटे (हैं) तथा (उनको) इस प्रकार जानकर (कि) ये अल्प-ज्ञानी (हैं), (उनके वचन को) असत्य स्वीकार करते हुए (उंनकी) अवज्ञा करते हैं, वे (अध्यात्मिक) गुरु का अपमान करते हैं।

51. जो (कोई) जली हुई अग्नि को छलांगता है अथवा जहरीले साँप को कुपित करता है अथवा जो (कोई) जीवन का इच्छुक (व्यक्ति) विष को खाता है (तो) उसका (अहित ही होता है)। (इसी प्रकार) (आध्यात्मिक) गुरु का अपमान करने में (भी) यह समानता है अर्थात् गुरु का अपमान करने में भी अहित ही होता है।

52. संभव (है) (कि) अग्नि न जलाए अथवा कुपित जहरीला साँप न खाए। संभव (है) (कि) समुद्र-मंथन से प्राप्त घातक विष (अथवा) सामान्य विष न मारे, किन्तु (आध्यात्मिक) गुरु की अवज्ञा से परम-शान्ति (संभव) ही नहीं (है)।

53. जो पव्वयं सिरसा भेत्तुमिच्छे
सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा ।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं
एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ॥

54. सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे
सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे ।
सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥

55. आयरियपाया पुण अप्पसन्ना
अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो ।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी
गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ॥

56. जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे
तस्संतिए वेणइयं पउंजे ।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ
काय ग्गिरा भो ! मणसा य निच्चं ॥

57. लज्जा दया संजम बंभचेरं
कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं ।
जे मे गुरू सययमणुसासयंति
ते हं गुरू सययं पूययामि ॥

53. जो (कोई) सिर से पर्वत को भेदने की इच्छा करता है, अथवा सोए हुए सिंह को जगाता है अथवा जो (कोई) भाले की नोक पर प्रहार देता है, (तो) (उसका अहित ही होता है)। गुरु का अपमान करने में (भी) यह स मानता है अर्थात् गुरु का अपमान करने में भी अहित ही होता है।

54. संभव (है) (कि) (कोई) सिर से पर्वत को भी भेद दे, संभव (है) (कि) (किसी को) कुपित सिंह न खाए, संभव (है) (कि) (किसी को) भाले की नोक भी न भेदे, (किन्तु) (आध्यात्मिक) गुरु की अवज्ञा करने से शान्ति (संभव) ही नहीं (है)।

55. (यदि) आचार्य (गुरु) अप्रसन्न (होते हैं) (तो) (व्यक्ति के लिए) ज्ञान का अभाव (होता है), (और) (यदि) (उनकी) अवज्ञा (होती है), (तो) (व्यक्ति के लिए) शान्ति (संभव) नहीं (होती है), इसलिए दुःख रहित सुख का इच्छुक (व्यक्ति) गुरु-प्रसाद (कृपा) के लिए उद्यत रहे।

56. जिसके पास (मनुष्य) धर्म (अध्यात्म) की बातों को सीखे, उसके समीप में विनम्रता रखे। ओ! (इसलिए) (तू) सिर से, जोड़े हुए हाथों से, शरीर से, वाणी से तथा मन से सदा (उनका) सम्मान कर (जिनसे तू अध्यात्म की बातों को सीखता है)।

57. कल्याण से सम्बन्धित (व्यक्ति) के लिए विनय, दया, संयम तथा ब्रह्मचर्य (अपनी) विशुद्धि के कारण (हैं)। जो गुरु मुझे सदैव (उनका) अभ्यास कराते हैं, उन गुरु को मैं सदैव पूजता हूँ।

58. जहा निसंते तवणऽच्चिमाली
पभासई केवल भारहं तु ।
एवाऽऽयरिओ सुय-सील-बुद्धिए
विरायई सुरमज्झे व इंदो ।।

59. जहा ससी कोमुइजोगजुत्ते
नक्खत्त—तारागणपरिवुडप्पा ।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के
एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ।।

60 महागरा आयरिया महेसी
समाहिजोगे सुय-सील-बुद्धिए ।
संपाविउकामे अणुत्तराइं
आराहए तोसए धम्मकामी ।।

61. मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स
खंधाओ पच्छा समुवेंति साला ।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता
तओ से पुप्फं च फलं रसो य ।।

62. एवं—धम्मस्स विणओ मूलं, परमो से मोक्खो ।
जेण कित्ति सुयं सग्घं निस्सेसं चाभिगच्छई ।।

58. जैसा प्रभात में ज्योति से शोभने वाला सूर्य सम्पूर्ण भारत को प्रकाशित करता है, वैसे ही श्रुत-ज्ञान, चारित्र और विवेक से (शोभने वाले) आचार्य (सबको प्रकाशित करते हैं) और जैसे देवताओं के मध्य में इन्द्र (शोभता है) वैसे ही (साधुओं के मध्य में) (आचार्य) शोभते हैं।

59. जैसे बादलों से रहित निर्मल आकाश में चाँदनी के सम्बन्ध-सहित चन्द्रमा (पूर्णिमा-चन्द्र) शोभित होता है (और) नक्षत्र (तथा) तारों के समूह से घिरा हुआ सूर्य (शोभित होता है), वैसे ही साधुओं के मध्य में आचार्य शोभित होते हैं।

60. (जो) आचार्य श्रेष्ठ (मूल्यों) की खोज करने वाले (हैं), श्रेष्ठ (गुणों की) खान (हैं), (तथा) (जो) श्रुत-ज्ञान, चारित्र और विवेक के द्वारा समाधि (समत्व) की प्राप्ति में (लीन हैं), (उनकी) धर्म (अध्यात्म) प्रेमी (तथा) सर्वोत्तम (गुणों) को प्राप्त करने का इच्छुक (व्यक्ति) सेवा करे (और) (उनको) सन्तुष्ट करे।

61. पेड़ की जड़ से तना उत्पन्न (होता है), बाद में, तने से शाखाएँ प्राप्त होती (उपजती) हैं। शाखाओं से शाखाएँ फूटती हैं उसके बाद में पत्ते और फूल (होते हैं) (और फिर) फल और रस (होता है)।

62. इसी प्रकार धर्म का मूल विनय (है), उसका अन्तिम (परिणाम) परम-शान्ति (है)। जिससे (विनय से) व्यक्ति कीर्ति, प्रशंसनीय ज्ञान और समस्त (गुण) प्राप्त करता हैं।

63. जे य चंडे मिए थद्धे दुव्वाई नियडीसढे ।
वुब्भई से अविणीयप्पा कट्ठं सोयगयं जहा ।।

64. विणयं पि जो उवाएण चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमेज्जंतिं दंडेण पडिसेहए ।।

65. तहेव अविणीयप्पा उववज्झा हया गया ।
दीसंति दुहमेहंता आभिओगमुवट्ठिया ।।

66. तहेव सुविणीयप्पा उववज्झा हया गया ।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढि पत्ता महायसा ।।

67. तहेव सुविणीयप्पा लोगंसि नर–नारिओ ।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढि पत्ता महायसा ।।

68. जे आयरिय–उवज्झायाणं सुस्सूसावयणंकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति जलसित्ता इव पायवा ।।

63. जो अतिक्रोधी, अज्ञानी, अभिमानी, अप्रिय बोलनेवाला, कपटी और धूर्त (होता है), वह अविनीत मनुष्य (दु:खरूपी जल के द्वारा) बहा कर लेजाया जाता है, जैसे जल-प्रवाह के द्वारा (बहा कर) लेजाया गया काठ (होता है)।

64. विनय में युक्ति के द्वारा भी प्रेरित जो मनुष्य क्रोध करता है, वह आती हुई दिव्य संपत्ति को डंडे से रोक देता है।

65. (जिस प्रकार) राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले (उदण्ड) हाथी (और) घोड़े दु.ख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार (किसी भी प्रकार के) प्रयास में लगे हुए अविनीत मनुष्य (भी) (दु:ख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं)।

66. (जिस प्रकार) राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले (सुशील) हाथी (और) घोड़े सुख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार विनीत मनुष्यों ने महान यश के कारण वैभव प्राप्त किया।

67. (जिस प्रकार) लोक में (सुशील) नर-नारियाँ सुख मे बढ़ती हुई देखी जाती हैं, उसी प्रकार विनीत मनुष्यों ने महान यश के कारण वैभव प्राप्त किया।

68. जो आचार्य और उपाध्याय की सेवा (करने वाले हैं) (तथा) (उनके) आदेश का पालन करने वाले (हैं), उनके ज्ञान और सदाचरण बढ़ते हैं, जैसे कि जल से सींचे हुए वृक्ष (बढ़ते हैं)।

69. दुग्गओ वा पओएणं चोइओ वहई रहं ।
एवं दुब्बुद्धि किच्चाणं वुत्तो वुत्तो पकुव्वई ।।

70. विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स य ।
जस्सेयं दुहओ नायं सिक्खं से अभिगच्छई ।।

71. जे यावि चंडे मइइड्ढिगारवे
पिसुणे नरे साहस हीणपेसणे ।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए
असंविभागी न हु तस्स मोक्खो ।।

72. निद्देसवत्ती पुण जे गुरूणं
सुयत्थधम्मा विणयम्मि कोविया ।
तरित्तु ते ओहमिणं दुरुत्तरं
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गय ।।

73. आयारमट्ठा विणयं पउंजे
सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो
गुरुं तु नाऽऽसाययई, स पुज्जो ।।

69. जैसे अंकुश के द्वारा प्रेरित दुष्ट हाथी रथ को आगे चलाता है, इसी प्रकार दुर्बुद्धि (शिष्य) कर्तव्यों को कहा हुआ, कहा हुआ (ही) करता है।

70. अविनीत के (जीवन में) अनर्थ (होता है) और विनीत के (जीवन में) समृद्धि (होती है), जिसके द्वारा यह दोनों प्रकार से जाना हुआ (है), वह (जीवन में) विनय को ग्रहण करता है।

71. जो भी (कोई) मनुष्य अति क्रोधी (है), चुगलखोर (है), उतावला है, (जिसके) बुद्धि (और) वैभव का अहंकार (है), (जिसका) प्रयोजन निन्दनीय (है), (जिसके द्वारा) धर्म नहीं समझा गया (है), (जो) विनय में निपुण नहीं (है), (जो) (यश आदि को) बाँटनेवाला नहीं (है), उसके लिए निश्चय ही परम शान्ति नहीं (है)।

72. इसके विपरीत जो (आध्यात्मिक) गुरु की आज्ञा में स्थित (हैं), (जो) विनय में निपुण (हैं), (जिनके द्वारा) धर्म (कर्तव्य) और परमार्थ सुने हुए (हैं), वे कर्म-समूह को नष्ट करके (तथा) इस दुस्तर (कठिनाई से पार किए जाने वाले) संसार को पार करके सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हुए (हैं)।

73. (जो) आचार को (ग्रहण करने) के लिए विनय को संपन्न करता है, जैसा कि (गुरु के द्वारा) कहा गया है (उसको) चाहते हुए (उसके) कथन को ग्रहण करके तथा (गुरु की) सेवा में उपस्थित रहते हुए (आध्यात्मिक) गुरु की अवज्ञा नहीं करता है, वह पूज्य (है)।

74. सक्का सहेउं आसाए कंटया
अओमया उच्छहया नरेणं ।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए
वईमए कण्णसरे, स पुज्जो ॥

75. मुहुत्तदुक्खा हु हवंति कंटया
अओमया, ते वि तओ सुउद्धरा ।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥

76. समावयंता वयणाभिघाया
कण्णंगया दुम्मणियं जणंति ।
धम्मो त्ति किच्चा परमग्गसूरे
जिइंदिए जो सहई, स पुज्जो ॥

77. अवण्णवायं च परम्मुहस्स
पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं ।
ओहारिणिं अप्पियकारिणिं च
भासं न भासेज्ज सया, स पुज्जो ॥

74. मनुष्य के द्वारा (धन आदि की) आशा से (उत्पन्न) उमंग के कारण लोहे से बने हुए काँटे सहे जाना संभव (है), किन्तु जो (किसी) आशा के बिना कानों के लिए बाण (स्वरूप) काँटों (वचनों) को सहता है, वह पूज्य (है)।

75. लोहे से बने हुए काँटे (शरीर में लगने पर) थोड़ी देर के लिए ही दुःखमय होते हैं तथा वे बाद में (शरीर से) आसानी से निकाले जा सकने वाले (होते हैं), (किन्तु) वाणी के द्वारा (बोले गए) दुर्वचन (जो काँटों के तुल्य होते हैं) कठिनाई से निकाले जा सकने वाले (कठिनाई से भुलाए जा सकने वाले) (होते हैं), (वे) वैर को बाँधने वाले (तथा) महा भय पैदा करने वाले (होते हैं)।

76. घटित होते हुए वचनों के प्रहार (जो) (किसी के) कानों में पहुँचे हुए (होते हैं), (वे) (उनमें) मानसिक पीड़ा उत्पन्न करते हैं, (किन्तु) सर्वोत्तम लक्ष्य में पराक्रमी (तथा) जितेन्द्रिए (व्यक्ति) जो (उनको), इस प्रकार समझकर (कि) (यह) (मेरा) कर्तव्य (है), सहता है, वह पूज्य है।

77. (जो) विरोधी (व्यक्ति) के लिए भी निन्दा के वचन नहीं बोलता है, सार्वजनिक रुप से (किसी के लिए भी) विद्वेषी बात बिल्कुल (नहीं कहता है), (संदिग्ध के विषय में) निश्चयात्मक वचन (नहीं कहता है) और अप्रीति उत्पन्न करने वाली भाषा (नहीं बोलता है), वह सदा पूज्य (है)।

78. अलोलुए अक्कुहए अमायी
अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नो वि य भावियप्पा
अकोउहल्ले य सया, स पुज्जो ।।

79. गुणेहिं साहू, अगुणेहऽसाहू
गेण्हाहि साहूगुण, मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं
जो राग-दोसेहिं समो, स पुज्जो ।।

80. तहेव डहरं व महल्लगं वा
इत्थी पुमं पव्वइयं गिहिं वा ।
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा
थंभं च कोहं च चए, स पुज्जो ।।

81. विणए १ सुए २ तवे ३ य आयारे ४ निच्चं पंडिया ।
अभिरामयंति अप्पाणं जे भवंति जिइंदिया ।।

82. पेहेइ हियाणुसासणं १
सुस्सूसई २ तं च पुणो अहिट्ठए ३ ।
न य माणमएण मज्जई ४
विणयसमाही आययट्ठिए १ ।।

78. (जो) चटोरा नहीं (है), नजरबंदी के काम करने वाला नहीं (है), (जो) निष्कपट (है), (जो) चुगली खानेवाला नहीं (है) तथा (जिसका) व्यवहार दीनता–रहित (है), (जो) (स्वयं का) प्रदर्शन नहीं करता है और (जो) कभी नहीं (चाहता है) (कि) (वह) (दूसरों के द्वारा) प्रदर्शित व्यक्ति (होवे), और (जो) (कभी) मजाक नहीं (करता है), वह सदा पूज्य (होता है)।

79. (व्यक्ति) सुगुणों के कारण साधु (होता है), (और) दुर्गुण–समूह के कारण ही असाधु। (अतः) (तुम) साधु (बनने) के लिए सुगुणों को ग्रहण करो (और) (उन दुर्गुणों को) छोड़ो (जिनके कारण) (व्यक्ति) असाधु (होता है)। (समझो) जो (व्यक्ति) आत्मा को आत्मा के द्वारा जानकर राग–द्वेष में समान (होता है), वह पूज्य (है)।

80. (जो) साधु की अथवा गृहस्थ की, उसी प्रकार (जो) बालक की अथवा बड़े की, स्त्री की अथवा पुरुष की (स्वयं) निन्दा नहीं करता है तथा (दूसरों से) कभी निन्दा नहीं करवाता है एवं (जो) अहंकार और क्रोध को छोड़ देता है, वह पूज्य है।

81. जो इन्द्रिय-विजयी होते हैं, (वे) बुद्धिमान (व्यक्ति) सदा अपने को विनय, श्रुत, तप और आचार में तत्परता से लगाते हैं।

82. (जो) मोक्ष (परम शान्ति) का इच्छुक (व्यक्ति) (है) (वह) हितकारी शिक्षण को चाहता है, उसको सुनता है और फिर (उसका) अभ्यास करता है, तथा (जो) (कभी भी) अहंकार-रूपी मादकता से पागल नहीं होता है, (उसके जीवन में) विनय–साधना (होती है)।

83. नाणमेगग्गचित्तो १-२ य ठिओ ३ ठावयई परं ४ ।
सुयाणि य अहिज्जित्ता रओ सुयसमाहिए २ ॥

84. विविहगुणतवोरए य निच्चं
भवइ निरासए निज्जरट्ठिए ।
तवसा धुणइ पुराणपावगं
जुत्तो सया तवसमाहिए ॥

85. जिणवयणरए अतिंतिणे
पडिपुण्णाययमाययट्ठिए ।
आयारसमाहिसंवुडे
भवइ य दंते भावसंधए ॥

86. अभिगम चउरो समाहिओ
सुविसुद्धो सुसमाहियप्पओ ।
विउलहियसुहावहं पुणो
कुव्वइ सो पयखेममप्पणो ॥

83. (जो) (व्यक्ति) (नैतिक–आध्यात्मिक) ग्रन्थों का अध्ययन करके श्रुत–साधना में संलग्न (होता है), (वह) (मूल्यात्मक) ज्ञान को (प्राप्त करता है), तथा एकाग्रचित्त वाला (होता है)। (और) (वह) (स्वयं) (मूल्यों में) जमा हुआ (रहता है) (और) दूसरे को भी (मूल्यों में) जमाता है।

84. (जो) कर्म–क्षय का इच्छुक (व्यक्ति) (है), (वह) सदा अनेक प्रकार के शुभ परिणामों को (उत्पन्न करने वाले) तप में लीन (रहता है) तथा वह (संसारी फल की) आशा से शून्य होता है। (इस तरह से) (जो) तप–साधना में सदा संलग्न (रहता है), वह तप के द्वारा पुराने पापों को नष्ट कर देता है।

85. .(जो) जिन–वचन में लीन है, (जो) बड़बड़ करने वाला नहीं (है), (जो) आत्मा में (आत्मा के साथ) सन्तुष्ट है, (जो) मोक्ष (परम–शान्ति) का इच्छुक (है), (जो) जितेन्द्रिय (है), (जो) (अपने को) (आत्म)-स्वभाव से जोड़ने वाला (है), (वह) आचार–साधना से युक्त होता है।

86. (जो) चारों समाधियों (साधनाओं) को (गुरु के) उपदेश से (ग्रहण करता है), (वह) मनुष्य विशुद्ध एवं प्रशान्त (हो जाता है) तथा वह (इसके फलस्वरुप) प्रचुर हित (एवं) सुख–जनक कल्याण को अपने लिए प्राप्त करता है।

87. सम्मदिट्ठी सया अमूढे
अत्थि हु नाणे तवे य संजमे य :
तवसा धुणई .पुराणपावगं
मण-वय्-कायसुसंवुडे जे, स भिक्खू ।।

88. न य वुग्गहियं कहं कहेज्जा
न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते ।
संजमधुवजोगजुत्ते
उवसंते अविहेडए जे, स भिक्खू ।।

89. हत्थसंजए पायसंजए
वायसंजए संजइंदिए ।
अज्झप्परए सुसमाहियप्पा
सुत्तत्थं च वियाणई जे, स भिक्खू ।।

90. अलोलो भिक्खू न रसेसु गिद्धे
उंछं चरे जीविय नाभिकंखे ।
इड्ढि च सक्कारण पूयणं च
चए ठियप्पा अणिहे जे, स भिक्खू ।।

87. जो सम्यक् दृष्टिवाला (अध्यात्म–दृष्टिवाला) (है), सदा व्याकुलता रहित (है), ज्ञान, तप और संयम में ही (स्थित) है, तप से पुराने पाप-(समूह) को नष्ट करता है, (तथा) मन–वचन–काय में पूरी तरह संवर-युक्त (पाप प्रवृत्ति रहित) है, वह साधु (होता है)।

88. जो कलह–संबंधी बात बिल्कुल नहीं कहता है, (जो) क्रोध बिल्कुल नहीं करता है, (जिसकी) इन्द्रिय–(समूह) शान्त (है), (जो) स्वस्थचित्त (है), (जो) संयम में निश्चल प्रवृत्ति सहित (है), (जो) (आत्म)-सन्तुष्ट (है), (जो) (गुणी का) आदर करने वाला (है), वह साधु (पवित्रात्मा) है।

89. (जिसके) हाथ संयमित (हैं), पैर संयमित (हैं), (जिसकी) वाणी संयमित (है), (जिसका) इन्द्रिय–(समूह) संयमित है, (और) जो मनुष्य पूरी तरह से शान्त (है), (जो) अध्यात्म में लीन (है), तथा (जो) सूत्र के अर्थ को जानता है, वह साधु (है)।

90. (जो) (मनुष्य) अचंचल (होता है), (जो) रसों में आसक्त नहीं (होता है), (जो) भिक्षा के लिए जाता है (तथा) (जो) (असंयमित) जीवन को नहीं चाहता है (वह) साधु (होता है)। तथा जो (योग से प्राप्त) वैभव की, (अपने) सत्कार एवं सम्मान की उपेक्षा करता है, (जो) स्थितबुद्धि (है) और धीर (है), (वह) साधु (होता है)।

91. न परं वएज्जासि 'अयं कुसीले'
जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।
जाणिय पत्तेय पुण्ण–पावं
अत्ताणं न समुक्कसे जे, स भिक्खू॥

92. न जाइमत्ते न य रूवमत्ते
न लाभमत्ते न सुएण मत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता
धम्मज्झाणरए य जे, स भिक्खू॥

93. तं देहवासं असुइं असासयं
सया चए निच्चहियट्ठियप्पा।
छिंदित्तु जाई–मरणस्स बंधणं
उवेइ भिक्खू अपुणागमं गइं॥

94. जया य चयई धम्मं अणज्जो भोगकारणा।
से तत्थ मुच्छिए बाले आयइं नावबुज्झई॥

95. इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती
दुन्नामधेज्जं च पिहुज्जणम्मि।
चुयस्स धम्माओ अहम्मसेविणो
संभिन्नवित्तस्स य हेट्ठओ गई॥

91. (तुम) दूसरे को मत कहो (कि) 'यह दुश्चरित्र' (है)। जिससे दूसरा कुपित हो उस (बात) को भी (तुम) मत कहो। जो (व्यक्तियों के) पुण्य-पाप को अलग-अलग जानकर अपने को (उनसे) ऊँचा नहीं दिखाता है, वह साधु है।

92. जो (मनुष्य) जाति के कारण मद-युक्त नहीं (है), (जो) (शारीरिक) सौंदर्य के कारण मद-युक्त नहीं (है), (जो) लाभ के कारण मद-युक्त नहीं (है), और (जो) ज्ञान के कारण मद-युक्त नहीं (है), तथा (जो) (अन्य) सभी मदों को छोड़कर शुभ ध्यान में लीन (रहता) है), वह साधु (है)।

93. साधु अनश्वर हित में स्थितबुद्धि (होता है)। (अतः (वह) उस अपवित्र (तथा) नश्वर देहरूपी वस्त्र की उपेक्षा करता है। (और) (अन्त में) जन्म-मरण के बन्धन को नष्ट करके मोक्ष गति को प्राप्त करता है।

94. जब अधम (व्यक्ति) भोग के प्रयोजन से धर्म (अध्यात्मिक मूल्यों) को सर्वथा छोड़ देता है, (तो) (यह कहना ठीक है कि) वह अज्ञानी उस (भोग) में मूर्छित (है)। (इस तरह से) (वह) (अपने) भविष्य को नहीं समझता है।

95. नैतिकता से विचलित (व्यक्ति) का, अनैतिकता का सेवन करने वाले का तथा खण्डित आचरण वाले का गमन (परलोक में) नीचे की ओर (नरक प्रदेश में) होता है। (तथा) इस लोक में भी (व्यक्ति) कर्तव्य-रहित, यश-रहित, कीर्ति-रहित और साधारण लोगों में बदनाम किए जाने योग्य (हो जाता है)।

96. भुंजित्तु भोगाइं पसज्झ चेयसा
तहाविहं कट्टु असंजमं बहुं ।
गइं च गच्छे अणभिज्झियं दुहं,
बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो ।।

97. जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ
चएज्ज देहं, न उ धम्मसासणं ।
तं तारिसं नो पयलेंति इंदिया
उवेंतवाया व सुदंसणं गिरिं ।।

98. जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं
काएण वाया अदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा
आइण्णो खिप्पमिव क्खलीणं ।।

99. अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो
सव्विदिएहिं सुसमाहिएहिं ।
अरक्खिओ जाइपहं उवेई
सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ ।।

100. दुल्लहा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सोग्गइं ।।

96. (दुराचारी व्यक्ति) मन से भोगों को अत्यधिक भोगकर (और) इसी भाँति असंयम को वहुतायत से ग्रहण करके, (इसी लोक में) अवांछित दुःख और स्थिति को प्राप्त करता है, तथा उसके लिए अध्यात्म ज्ञान वार-वार (जन्म लेने पर भी) आसानी से प्राप्त नहीं (होता है) ।

97. जिसका बुद्धि इस प्रकार हा निश्चित होती है 'कि) 'देह को त्याग दूँगा, किन्तु नैतिकता के अनुशासन को ीं,' तो उस जैसे (मनुष्य) को इन्द्रिय-विषय विचलित नहीं कर सकते हैं, जैसे कि समीप आता हुआ (तेज) वायु सुदर्शन पर्वत को (विचलित नहीं कर सकता है) ।

98. जहाँ कहीं धीर (व्यक्ति) मन से, वचन से या काया से खराव (कार्य) किया हुआ (अपने में) देखे, वहाँ ही (वह) (अपने को) पीछे खींचे, जैसे कुलीन घोड़ा लगाम को (देखकर) (अपने को) तुरन्त (पीछे खींच लेता है) ।

99. निस्सन्देह आत्मा पूरी तरह से सभी उपशमित इन्द्रियों द्वारा सदा सुरक्षित को जानी चाहिए । अरक्षित (आत्मा) जन्म-मार्ग की ओर जाती है । सुरक्षित (आत्मा) सब दुःखों से छुटकारा पाती है ।

100. निस्सन्देह किसी (सांसारिक) लाभ के विना देने वाले दुर्लभ (हैं), (तथा) किसी (सांसारिक) लाभ के विना जीने वाले भी दुर्लभ (हैं) । किसी (सांसारिक) लाभ के विन' देने वाले (और) किसी (सांसारिक) लाभ के विना जीने वाले–दोनों ही सुगति (श्रेष्ठ अवस्था) को प्राप्त होते हैं ।

संकेत-सूची

संकेत		अर्थ
(अ)	=	अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)
अक	=	अकर्मक क्रिया
अनि	=	अनियमित
आज्ञा	=	आज्ञा
कर्म	=	कर्मवाच्य
(क्रिविअ)	=	क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)
तुवि	=	तुलनात्मक विशेषण
पु०	=	पुल्लिग
प्रे	=	प्रेरणार्थक क्रिया
भकृ	=	भविष्य कृदन्त
भवि	=	भविष्यत्काल
भाव	=	भाववाच्य
भू	=	भूतकाल
भूकृ	=	भूतकालिक कृदन्त
व	=	वर्तमानकाल
वकृ	=	वर्तमान कृदन्त
वि	=	विशेषण
विधि	=	विधि
विधिकृ	=	विधि कृदन्त
स	=	सर्वनाम
संकृ	=	सम्बन्ध भूत कृदन्त
सक	=	सकर्मक क्रिया
सवि	=	सर्वनाम विशेषण
स्त्री	=	स्त्रीलिंग
हेकृ	=	हेत्वर्थ कृदन्त
( )	=	इस प्रकार के कोष्ठक में मूल शब्द रक्खा गया है।

[( )+( )+( )........]
इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर + चिह्न किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्टकों में गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।

[( ) - ( ) - ( )........]
इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '-' चिह्न समास का द्योतक है।

• जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1........आदि) ही लिखी है, वहाँ उस कोष्टक के अन्दर का शब्द 'संज्ञा' है।

• जहाँ कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नहीं बने हैं, वहाँ कोष्टक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है।

1/1 अक. या सक=उत्तम पुरुष/एक वचन
1/2 अक या सक=उत्तम पुरुष/बहुवचन
2/1 अक या सक=मध्यम पुरुष/एक वचन
2/2 अक या सक=मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 अक या सक=अन्य पुरुष/एक वचन
3/2 अक या सक=अन्य पुरुष/बहुवचन

1/1 = प्रथमा/एकवचन
1/2 = प्रथमा/बहुवचन
2/1 = द्वितीया/एकवचन
2/2 = द्वितीया/बहुवचन
3/1 = तृतीया/एकवचन
3/2 = तृतीया/बहुवचन
4/1 = चतुर्थी/एकवचन
4/2 = चतुर्थी/बहुवचन
5/1 = पंचमी/एकवचन
5/2 = पंचमी/बहुवचन
6/1 = षष्ठी/एकवचन
6/2 = षष्ठी/बहुवचन
7/1 = सप्तमी/एकवचन
7/2 = सप्तमी/बहुवचन
8/1 = संबोधन/एकवचन
8/2 = संबोधन/बहुवचन

व्याकरणिक विश्लेषण

1. धम्मो (धम्म) 1/1 मंगलमुक्किट्ठं [(मंगलं)+(उक्किट्ठं)] मंगलं (मंगल) 1/1 उक्किट्ठं (उक्किट्ठ) 1/1 वि अहिंसा (अहिंसा) 1/1 संजमो (संजम) 1/1 तवो (तव) 1/1 देवा (देव) 1/2 वि (अ) =भी तं (त) 2/1 स नमंसंति (नमंस) व 3/2 सक जस्स (ज) 6/1 स धम्मे (धम्म) 7/1 सया (अ)=सदा मणो (मण) 1/1

2. जे (ज) 1/1 सवि य (अ)=और कंते (कंत) 2/2 वि पिए (पिअ) 2/2 वि भोए (भोअ) 2/2 लद्धे (लद्ध) 2/2 वि विप्पिट्ठि● (विप्पिट्ठि) मूल शब्द 2/1 कुव्वई⊠ (कुव्व) व 3/1 सक साहीणे [(स)+(अहीणे)] [(स) - (अहीण) 2/2 वि] चयई* (चय) व 3/1 सक भोए (भोअ) 2/2 से (त) 1/1 सवि हु (अ)=ही चाइ● (चाइ) मूल शब्द 1/1 वि त्ति (अ)=इस प्रकार वुच्चई⊠ (वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि

● पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। यह नियम विशेषण के लिए भी काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

⊠ पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

स्त्री

3. समाए (सम→समा) 7/1 वि पेहाए (पेहा) 7/1 परिव्वयंतो (परिव्वय) वकृ 1/1 सिया (अ)=कभी मणो (मण) 1/1 निस्सरई● (निस्सर) व 3/1 अक बहिद्धा (अ)=बाहर न (अ) =नहीं सा (ता) 1/1 सवि महं (अम्ह) 6/1 स नो (अ)=नहीं

● छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

वि (अ) = निश्चय ही अहं (अम्ह) 1/1 स पि (अ)=भी तीसे (ती)6/1 स इच्चेव (अ)=इस प्रकार ताओ (ता) 5/1 स विणएज्ज (वि – णी → वि –णएज्ज) विधि 3/1 सक अनि रागं (राग) 2/1

4. आयावयाही* (आयावय) प्रेरक● अनि विधि 2/1 सक चय (चय) विधि 2/1 सक सोगुमल्लं (सोगुमल्ल) 2/1 कामे (काम) 2/2 कमाही* (कम) विधि 2/1 सक कमियं (कम) भूकृ 1/1 खु (अ)= निश्चय ही दुक्खं (दुक्ख) 1/1 छिंदाहि* (छिंद) विधि 2/1 सक दोसं (दोस) 2/1 विणएज्ज (वि–णी→विणएज्ज) विधि 2/1 सक अनि रागं (राग) 2/1 एवं (अ)=इस प्रकार सुहीं (सुहि) 1/1 वि होहिसि (हो) भवि 2/1 अक संपराए (संपराअ) 7/1

   ● आतप् (अय) आतापय → आयावय ।

   * यहाँ रूप बनना चाहिए—आयावयहि, पर कभी-कभी विधि में अन्त्यस्थ अ (य) के स्थान पर आ (या) हो जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-158) इसी प्रकार 'छिंदाहि' और 'कमाही' हैं। यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'हि' को 'ही' किया गया है।

5. कहं (अ)=कैसे चरे (चर) विधि 3/1 सक कहं (अ)=कैसे चिट्ठे (चिट्ठ) विधि 3/1 अक कहमासे [(कहं) + (आसे)] कहं (अ)= कैसे. आसे (आस) विधि 3/1 अक कहं (अ)=कैसे सए (सअ) विधि 3/1 अक कहं (अ)=किस प्रकार भुंजंतो (भुंज) वकृ 1/1 भासंतो (भास) वकृ 1/1 पावं (पाव) 2/1 वि कम्मं (कम्म) 2/1 न (अ) =नहीं बंधई● (बंध) व 3/1 सक

   ● पूरी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

6. जयं (क्रिविअ) = जागरूकतापूर्वक चरे (चर) विधि 3/1 सक चिट्ठे (चिट्ठ) विधि 3/1 अक जयमासे [(जयं) + (आसे)] जयं (क्रिविअ) = जागरूकतापूर्वक. आसे (आस) विधि 3/1 अक सए (सअ) विधि 3/1 अक भुंजंतो (भुंज) वकृ 1/1 भासंतो (भास) वकृ 1/1 पावं (पाव) 2/1 वि कम्मं (कम्म) 2/1 न (अ) = नहीं बंधई● (बंध) व 3/1 सक

● पूरी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ, 138)।

7. सव्वभूयप्पभूयस्स [(सव्व) + (भूय) + (अप्प) + (भूयस्स)] [(सव्व)-(भूय)*-(अप्प)-(भूय)● 6/1ˣ वि] सम्मं (अ) = अच्छी तरह से भूयाइं+ (भूय) 2/2 पासओ (पासअ) 1/1 वि पिहियासवस्सˣ [(पिहिय) + (आसवस्स)] [(पिहिय) भूकृ अनि -(आसव) 6/1] दंतस्सˣ (दंत) भूकृ 6/1 अनि पावं (पाव) 2/1 वि कम्मं (कम्म) 2/1 न (अ) = नहीं बंधई⊠ (बंध) व 3/1 सक.

* भूय = प्राणी

● भूय (वि) = समान. × कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया या पंचमी के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)।

\+ कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

⊠ पूरी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

8. पढमं (अ) = सर्वप्रथम नाणं (नाण) 2/1 तओ (अ) = बाद में दया (दया) 1/1 एवं (अ) = इस प्रकार चिट्ठइ (चिट्ठ) व 3/1 अक सव्वसंजए [(सव्व)-(संजअ) 1/1 वि] अन्नाणी (अन्नाणि) 1/1

वि **किं** (किं) 2/1 वि **काही**● (काही) भवि 3/1 सक **किं वा** (अ) =कैसे **नाहिइ** (ना) भवि 3/1 सक **छेय*** (छेय) मूल शब्द 2/1 **पावगं** (पावग) 2/1

● पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 771 (अर्धमागधी में 'काही' भी होता है)।

* किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा-शब्द काम में लाया जा सकता है। (प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।

. **सोच्चा** (सोच्चा) संकृ अनि **जाणइ** (जाण) व 3/1 सक **कल्लाणं** (कल्लाण) 2/1 वि **पावगं** (पावग) 2/1 वि **उभयं** (उभय) 2/1 वि **पि** (अ)=भी **जाणई**● (जाण) व 3/1 सक **जं** (ज) 1/1 सवि **छेयं** (छेय) 1/1 वि **तं** (त) 2/1 सवि **समायरे*** (समायर) विधि 3/1 सक

● छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

* पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 683।

10. **जो** (ज) 1/1 सवि **जीवे** (जीव) 2/2 **वि** (अ)=भी **न** (अ)=नहीं **याणति** (याण) व 3/1 सक **अजीवे** (अजीव) 2/2 **जीवाऽजीवे** [(जीव)+(अजीवे)] [(जीव)-(अजीव) 2/1] **अयाणंतो** (अयाण) वकृ 1/1 **कह** (अ)=कैसे **सो** (त) 1/1 सवि **नाहिइ** (ना) भवि 3/1 सक **संजमं** (संजम) 2/1

11. **जो** (ज) 1/1 सवि **जीवे** (जीव) 2/2 **वि** (अ)=भी **वियाणति** (वियाण) व 3/1 सक **अजीवे** (अजीव) 2/2 **जीवाऽजीवे** [(जीव)+(अजीवे)] [(जीव)-(अजीव) 2/2] **वियाणंतो** (वियाण) वकृ 1/1 **सो** (त) 1/1 सवि **हु** (अ)=निश्चय ही **नाहिइ** (ना) भवि 3/1 सक **संजमं** (संजम) 2/1

12. जया (अ)=जब जीवमजीवे [(जीवं)+(अजीवे)] जीवं (जीव) 2/1 अजीवे (अजीव) 2/2 य (अ)=और दो (दो) 2/2 वि वि (अ)=ही एए (एअ) 2/2 सवि वियाणई* (वियाण) व 3/1 सक तया (अ)=तब गइं (गइ) 2/1 बहुविहं (बहुविह) 2/1 वि सव्वजीवाण [(सव्व)-(जीव) 6/2] जाणई* (जाण) व 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

13. जया (अ)=जब गइं (गइ) 2/1 बहुविहं (बहुविह) 2/1 वि सव्वजीवाण [(सव्व)-(जीव) 6/2] जाणई* (जाण) व 3/1 सक तया (अ)=तब पुण्णं (पुण्ण) 2/1 च• (अ)=और पावं (पाव) 2/1 बंधं (बंध) 2/1 मोक्खं (मोक्ख) 2/1

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

● कभी-कभी वाक्यांश को जोड़ने के लिए 'च' का दो बार प्रयोग कर दिया जाता है।

14. जया (अ)=जब पुण्णं (पुण्ण) 2/1 च(अ)=और पावं(पाव) 2/1 बंधं (बंध) 2/1 मोक्खं (मोक्ख) 2/1 च (अ)=और जाणई* (जाण) व 3/1 सक तया (अ)=तब निव्विदए (निव्विद) व 3/1 सक भोए (भोअ) 2/2 जे (अ)=पाद-पूर्ति दिव्वे (दिव्व) 2/2 वि जे (अ)=पाद-पूर्ति य (अ)=और माणुसे (माणुस) 2/2 वि

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

15. जया (अ)=जब निव्विदए (निव्विद) व 3/1 सक भोए (भोअ) 2/2 जे* (अ)=पाद-पूर्ति दिव्वे (दिव्व) 2/2 वि जे* (अ)=पाद-पूर्ति य (अ)=और माणुसे (माणुस) 2/2 वि तया (अ)=तब चयइ (चय) व 3/1 सक संजोगं (संजोग) 2/1 सब्भिंतरबाहिरं [(स)+

(अोब्भतर) + (वाहर)] [(स)-(अब्भितर) वि-(वाहिर) 2/1 वि]

16. जया (अ) = जव संवरमुक्कट्ठं [(संवरं) + (उक्कट्ठं)] संवरं (संवर) 2/1 उक्कट्ठं (उक्कट्ठ) 2/1 वि धम्मं (धम्म) 2/1 फासे (फास) व 3/1 सक अणुत्तरं (अणुत्तर) 2/1 वि तया (अ) = तव धुणइ (धुण) व 3/1 सक कम्मरयं [(कम्म)-(रय) 2/1] अवोहिकलुसं [(अवोहि) वि-(कलुस) 2/1] कडं (कड) भूकृ 2/1 अनि

17. जया (अ) = जव धुणइ (धुण) व 3/1 सक कम्मरयं [(कम्म)-(रय) 2/1] अवोहिकलुसं [(अवोहि) वि-(कलुस) 2/1] कडं (कड) भूकृ 2/1 अनि तया (अ) = तव सव्वत्तगं• (सव्वत्तग) 2/1 वि नाणं (नाण) 2/1 दंसणं (दंसण) 2/1 चाभिगच्छई [(च) + (अभिगच्छई)] च (अ) = और अभिगच्छई* (अभिगच्छ) व 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदो में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 138)

• सव्वत्तग (सर्वत्रग) = सर्वव्यापी (Omnipresent) Monier Williams, Dict. P. 1189.

18. जया (अ) = जव सव्वत्तगं* (सव्वत्तग) 2/1 वि नाणं (नाण) 2/1 दंसणं (दंसण) 2/1 चाभिगच्छई• [(च) + (अभिगच्छई)] च (अ) = और अभिगच्छई (अभिगच्छ) व 3/1 सक तया (अ) = तव लोगमलोगं [(लोगं) + (अलोगं)] लोगं (लोग) 2/1 अलोगं (अलोग) 2/1 च (अ) = और जिणो (जिण) 1/1 जाणइ (जाण) व 3/1 सक केवली (केवलि) 1/1 वि

* गाथा 17 देखें।

• पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में 'ई' हो जाता है। (पिशल प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 138)।

19. जया (अ)=जब लोगमलोगं [(लोगं)+(अलोगं)] लोगं (लोग) 2/1 अलोगं (अलोग) 2/1 च (अ)=और जिणो (जिण) 1/1 जाणइ (जाण) व 3/1 सक केवली (केवलि) 1/1 वि तया (अ) =तब जोगे (जोग) 2/2 निरुंभित्ता (निरुंभ) संकृ सेलेसिं (सेलेसी) 2/1 पडिवज्जई* (पडिवज्ज) व 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 138)।

20. जया (अ)=जब जोगे (जोग) 2/2 निरुंभित्ता (निरुंभ) संकृ सेलेसिं (सेलेसी) 2/1 पडिवज्जई* (पडिवज्ज) व 3/1 सक तया (अ)=तब कम्मं (कम्म) 2/1 खवित्ताणं (खव) संकृ सिद्धिं (सिद्धि) 2/1 गच्छइ (गच्छ) व 3/1 सक नीरओ (नीरअ) 1/1 वि

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 138)

21. तत्थिमं [(तत्थ)+(इमं)] तत्थ (अ)=वहां पर इमं (इम) 1/1 सवि पढमं (पढम) 1/1 वि ठाणं (ठाण) 1/1 महावीरेण (महावीर) 3/1 देसियं (देस) भूकृ 1/1 अहिंसा (अहिंसा) 1/1 निउणा (क्रिविअ)=सूक्ष्म रूप से दिट्ठा (दिट्ठ→दिट्ठा) भूकृ 1/1 अनि स्त्री सव्वभूएसु [(सव्व)-(भूअ) 7/2] संजमो* (संजम) 1/1

* संजम=संयम=करुणा की भावना, दयाभाव (आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश)

22. जावंति=जावं-ति (अ)=जितने भी लोए (लोअ) 7/1 पाणा (पाण) 1/2 तसा (तस) 1/2 वि अदुव (अ)=अथवा थावरा (थावर) 1/2 वि ते (त) 2/2 सवि जाणमजाणं [(जाणं)+(अजाणं)] जाणं (जाणं) वकृ 1/1 अनि अजाणं (अजाणं) वकृ 1/1 अनि वा (अ) =या न (अ)=न हणे (हण) विधि 3/1 सक नो (अ)=न वि (अ) =भी घायए (घाय) विधि 3/1 सक

23. सव्वजीवा [(सव्व) वि-(जीव) 1/2] वि (अ)=ही इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक जीविउं* (जीव) हेकृ न (अ)=नहीं मरिज्जिउं● (मर) हेकृ तम्हा (अ)=इसलिए पाणवहं [(पाण)-(वह) 2/1] घोरं (घोर) 2/1 वि निग्गंथा (निग्गंथ) 1/2 वज्जयंति (वज्जयंति) व 3/2 सक अनि णं (न) 2/1 स

* इच्छार्थक धातुओं के साथ हेत्वर्थ कृदन्त का प्रयोग होता है।

● 'मर' क्रिया में 'ज्ज' प्रत्यय लगाने पर अन्त्य 'अ' का 'इ' होने से 'मरिज्ज' बना और इसमें हेत्वर्थ कृदन्त के 'उ' प्रत्यय को जोड़ने से पूर्ववर्ती 'अ' का 'इ' होने के कारण 'मरिज्जिउ' बना है। इसका अर्थ 'मरिउ' की तरह ही होगा।

24. अप्पणट्ठा [(अप्पण)+(अट्ठा)] [(अप्पण)-(अट्ठा) 1/1] परट्ठा [(पर)+(अट्ठा)] [(पर)-(अट्ठा) 1/1] वा (अ)=या कोहा (कोह) 5/1 वा (अ)=या जइ वा (अ)=भले ही भया (भय) 5/1 हिंसगं (हिंसग) 2/1 वि न (अ)=न मुसं (मुसा) 2/1 बूया* (बूया) विधि 3/1 सक अनि नो (अ)=न वि (अ)=ही अन्नं● (अन्न) 2/1

आव (प्रेरक)

वि वयावए (वय———→वयाव) विधि 3/1 सक

● नियम से प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है, किन्तु बोलना, जाना, जानना आदि अर्थों वाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया न होकर द्वितीया होती है। इसलिए यहां 'अन्नं' में द्वितीया है।

* पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 685।

25. मुसावाओ (मुसावाअ) 1/1 य (अ)=निस्संदेह लोगम्मि (लोग) 7/1 सव्वसाहूहिं [(सव्व) वि-(साहु) 3/2] गरहिओ (गरह) भूकृ 1/1 अविस्सासो (अविस्सास) 1/1 य (अ)=बिल्कुल भूयाणं*

* कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

(भूय) 6/2 तम्हा (अ)=इसलिए मोसं (मोस) 2/1 विवज्जए (विवज्ज) विधि 3/1 सक

26. चित्तमंतमचित्तं [(चित्तमंतं) + (अचित्तं)] चित्तमंतं (चित्तमंत) 2/1 अचित्तं (अचित्त) 2/1 वा (अ)=या अप्पं (अप्प) 2/1 वि वा (अ) =या जइ वा (अ)=भले ही बहुं (बहु) 2/1 वि दंतसोहणमेत्तं [(दंत)-(सोहण) वि-(मेत्त) 2/1] पि (अ)=भी ओग्गहं* (ओग्गह) 2/1 सि (अस) व 2/1 अक अजाइया (अ-जाअ) संकृ

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

27. न (अ)=नहीं सो (त) 1/1 सवि परिग्गहो (परिग्गह) 1/1 वुत्तो (वुत्त) भूकृ 1/1 अनि नायपुत्तेण (नायपुत्त) 3/1 ताइणा (ताइ) 3/1 वि मुच्छा (मुच्छा) 1/1 परिग्गहो* (परिग्गह) 1/1 वुत्तो* (वुत्त) भूकृ 1/1 अनि इइ (अ)=इस प्रकार वुत्तं (वुत्त) भूकृ 1/1 अनि महेसिणा (महेसि) 3/1

* एक वाक्य में यदि स्त्रीलिंग और पुल्लिंग शब्द है तो क्रिया पु. के अनुसार होगी।

28. परिक्खभासी [(परिक्ख) संकृ अनि-(भासि) 1/1 वि] सुसमाहिइंदिए [(सुसमाहिअ) + (इंदिए)] [(सु-समाहिअ) भूकृ अनि-(इंदिअ) 1/1] चउक्कसायावगए [(चउ) + (क्कसाय) + (अवगए)] [(चउ) वि-(क्कसाय)-(अवगअ) भूकृ 1/1 अनि] अणिस्सिए (अणिस्सिअ) 1/1 वि स (त) 1/1 सवि निद्धुणे (निद्धुण) व 3/1 सक धुण्णमलं [(धुण्ण) वि-(मल) 2/1] पुरेकडं (पुरेकड) 2/1 वि आराहए (आराह) व 3/1 सक लोगमिणं [(लोगं) + (इणं)] लोगं (लोग) 2/1 इणं (इम) 2/1 सवि तहा (अ)=और परं (पर) 2/1 वि

29. **न** (अ)=नहीं **बाहिरं** (वाहिर) 2/1 वि **परिभवे** (परिभव) विधि 3/1 सक **अत्ताणं** (अत्ताण) 2/1 **समुक्कसे** (समुक्कस) विधि 3/1 सक **सुयलाभे** [(सुय)-(लाभे) 7/1] **मज्जेज्जा** (मज्ज) विधि 3/1 अक **जच्चा** (जच्चा) 6/1 अनि **तवसि*** (तवसि) मूल शब्द 6/1 वि **बुद्धिए●** (बुद्धि) 6/1

* किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द (विशेषण भी) काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517) अपभ्रंश में षष्ठी में भी मूल शब्द ही काम में लाया जाता है।

● विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ-स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल: प्रा. भा. व्या. पृष्ठ 182)।

30. **से** (त) 1/1 सवि **जाणमजाणं** [(जाणं)+(अजाणं)] जाणं (क्रिविअ)=ज्ञानपूर्वक अजाणं* (क्रिविअ)=अज्ञानपूर्वक **वा** (अ) =अथवा **कट्टु** (अ)=करके या कट्टु (कट्टु) संकृ अनि **आहम्मियं** (आहम्मिय) 2/1 वि **पयं** (पय) 2/1 **संवरे** (संवर) विधि 3/1 सक **खिप्पमप्पाणं** [(खिप्पं)+(अप्पाणं)] खिप्पं (अ) = तुरन्त अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 **बीयं** (अ)=दूसरी बार **तं** (त) 2/1 सवि **न** (अ)=न **समायरे** (समायर) विधि 3/1 सक

* जाणं, अजाणं नपुंसक लिंग एक वचन में प्रयुक्त हैं, इसलिए इन्हें क्रिविअ कहा गया है। इन्हें 'अनि' वर्तमान कृदन्त एक वचन भी माना जा सकता है, किन्तु अर्थ क्रिविअ मानने से ठीक बैठता है।

31. **अणायारं** (अणायार) 2/1 **परक्कम्म**(परक्कम्म) संकृ अनि **नेव** (अ) =कभी न **गूहे** (गूह) विधि 3/1 सक **न**(अ)=नहीं **निण्हवे** (निण्हव) विधि 3/1 सक **सुई** (सुइ) 1/1 वि **सया** (अ)=सदा **वियडभावे** [(वियड)-(भाव) 7/1] **असंसत्ते** (असंसत्त) 1/1 वि **जिइंदिए** (जिइंदिअ) 1/1 वि

32. अमोहं (अमोह) 2/1 वि वयणं (वयण) 2/1 कुज्जा (कु) विधि 3/1 सक आयरियस्स (आयरिय) 6/1 महप्पणो (महप्पण) 6/1 तं (त) 2/1 सवि परिगिज्झ (परिगिज्झ) संकृ अनि वायाए* (वाया) 7/1 कम्मुणा• (कम्म) 3/1 उववायए (उववाय) विधि 3/1 सक

* 'कम्म' के रूपों में थोड़ी विशेषता होती है। (दोशी: प्राकृतमार्गोपदेशिका, पृष्ठ 180)।

● कभी-कभी द्वितीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)।

33. अधुवं (अधुव) 2/1 वि जीवियं (जीविय) 2/1 नच्चा (नच्चा) संकृ अनि सिद्धिमग्गं [(सिद्धि)-(मग्ग) 2/1] वियाणिया (वियाण) संकृ विणियट्टेज्ज (विणियट्ट) विधि 3/1 अक भोगेसु* (भोग) 7/2 आउं (आउ) 2/1 परिमियमप्पणो [(परिमियं)+(अप्पणो)] परिमियं (परिमिय) 2/1 वि अप्पणो (अप्पण) 6/1

* कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)।

34. जरा (जरा) 1/1 जाव (अ)=जब तक न (अ)=नहीं पीलेइ (पील) व 3/1 सक वाही (वाहि) 1/1 वड्ढई* (वड्ढ) व 3/1 अक जाविंदिया [(जाव)+(इंदिया)] जाव (अ)=जब तक इंदिया (इंदिय) 1/2 हायंति (हाय) व 3/2 अक ताव (अ)=तब तक धम्मं (धम्म) 2/1 समायरे (समायर) विधि 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 138)।

35. कोहं (कोह) 2/1 माणं (माण) 2/1 च (अ)=और मायं (माया) 2/1 च* (अ)=और लोभं (लोभ) 2/1 पाववड्ढणं [(पाव)-(वड्ढण) 2/1 वि] वमे (वम) विधि 3/1 सक चत्तारि (चउ) 2/2 दोसे (दोस) 2/2 उ (अ)=निश्चय ही इच्छंतो (इच्छ) वकृ 1/1 हियमप्पणो [(हियं)+(अप्पणो)] हियं (हिय) 2/1 अप्पणो (अप्पण) 6/1

* कभी-कभी वाक्यांश को जोड़ने के लिए 'च' का प्रयोग दो बार कर दिया जाता है।

36. कोहो (कोह) 1/1 पीइं (पीइ) 2/1 पणासेइ (पणास) व 3/1 सक माणो (माण) 1/1 विणयनासणो [(विणय)-(नासण) 1/1 वि] माया (माया) 1/1 मित्ताणि (मित्त) 2/2 नासेइ (नास) व 3/1 सक लोभो (लोभ) 1/1 सव्वविणासणो [(सव्व) वि-(विणासण) 1/1 वि]

37. उवसमेण (उवसम) 3/1 हणे (हण) विधि 3/1 सक कोहं (कोह) 2/1 माणं (माण) 2/1 मद्दवया (मद्दव) स्वार्थिक 'य' 5/1 जिणे (जिण) विधि 3/1 सक मायं (माया) 2/1 चऽज्जवभावेण [(च) +(अज्जव)+(भावेण)] च (अ)=और [(अज्जव)-(भाव) 3/1] लोभं (लोभ) 2/1 संतोसओ* (संतोस) 5/1

* संतोसाओ= संतोसओ विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)।

38. कोहो (कोह) 1/1 य* (अ)=और माणो (माण) 1/1 अणिग्गहीया (अणिग्गहीया) भूकृ 1/2 अनि माया (माया) 1/1 लोभो (लोभ) 1/1 पवड्ढमाणा (पवड्ढ) वकृ 1/2 चत्तारि (चउ)

* वाक्यांश को जोड़ने के लिए कभी-कभी 'य' का प्रयोग दो बार कर दिया जाता है।

1/2 वि एए (एअ) 1/2 सवि कसिणा (कसिण) 1/2 वि कसाया (कसाय) 1/2 सिंचंति (सिंच) व 3/2 सक मूलाइं (मूल) 2/2 पुणब्भवस्स (पुणब्भव) 6/1

39. राइणिएसु (राइणिअ) 7/2 विणयं (विणय) 2/1 पउंजे (पउंज) विधि 3/1 सक धुवसीलयं [(धुव) वि-(सील) स्वार्थिक 'य' 2/1] सययं (अ)=सदा न (अ)=नहीं हावएज्जा (हाव) विधि 3/1 सक कुम्मो (कुम्म) 1/1 व्व (अ)=की तरह अल्लीण-पलीणगुत्तो [(अल्लीण) वि-(पलीण) वि-(गुत्त) 1/1 वि] परक्कमेज्जा (परक्कम) विधि 3/1 अक तव-संजमम्मि [(तव)-(संजम) 7/1]

40. निद्दं (निद्दा) 2/1 च (अ)=बिल्कुल न (अ)=न बहु (क्रिविअ) =अत्यधिक मन्नेज्जा (मन्न) विधि 3/1 सक सप्पहासं=संप्पहासं (संप्पहास) 2/1 विवज्जए (विवज्ज) विधि 3/1 सक मिहो (अ)= गुप्त रूप से कहाहिं* (कहा) 3/2 न (अ)=न रमे (रम) विधि 3/1 अक सज्झायम्मि (सज्झाय) 7/1 रओ (रअ) 1/1 वि सया (अ)=सदा

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

41. इहलोग-पारत्तहियं [(इहलोग)-(पारत्त) वि-(हिय) 1/1] जेणं (अ)=जिसके द्वारा गच्छइ (गच्छ) व 3/1 सक सोग्गइं (सोग्गइ) 2/1 बहुसुयं (बहुसुय) 2/1 वि पज्जुवासेज्जा (पज्जुवास●) विधि 3/1 सक पुच्छेज्जऽत्थविणिच्छयं [(पुच्छेज्ज)+(अत्थ)+(विणिच्छयं)] पुच्छेज्ज (पुच्छ)* विधि 3/1 सक [(अत्थ)-(विणिच्छय) 2/1]

* 'पुच्छ' द्विकर्मक क्रिया है।

● पर्युपास् (पज्जुवास)=आश्रय लेना। (आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश, पृष्ठ 167)।

42. अप्पत्तियं (अप्पत्तिय) 1/1 जेण (अ)=जिससे सिया* (सिया) विधि 3/1 अक अनि आसु (अ)=शीघ्र कुप्पेज्ज (कुप्प) विधि 3/1 अक वा (अ)=और परो (पर) 1/1 सव्वसो (अ)=सर्वथा/बिल्कुल तं (त) 2/1 स न (अ)=न भासेज्जा (भास) विधि 3/1 सक भास (भास) 2/1 अहियगामिणि [(अहिय)-(गामिणी) 2/1 वि]

* पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 685।

43. दिट्ठं (दिट्ठ) भूकृ 2/1 अनि मियं (मिय) 2/1 वि असंदिद्धं (असंदिद्ध) 2/1 वि पडिपुण्णं (पडिपुण्ण) 2/1 वि वियं* (विय) 2/1 वि जियं (जिय) 2/1 वि अयंपिर-मणुव्विग्गं [(अयंपिरं)+(अणुव्विग्गं)] अयंपिरं (अयंपिर) 2/1 वि अणुव्विग्गं (अणुव्विग्ग) 2/1 वि भासं (भास) 2/1 निसिर (निसिर) विधि 2/1 सक अत्तवं• (अत्तवन्त→अत्तवन्तो→अत्तवं) 8/1 वि

[विय=व्यक्त, जिय=परिचित]

* दसवेयालियं—सं. मुनि नथमल पृष्ठ 411।

• अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 427।

44. विसएसु (विसअ) 7/2 मणुण्णेसुं (मणुण्ण) 7/2 वि पेमं (पेम) 2/1 नाभिनिवेसए [(न)+(अभिनिवेसए)] न (अ)=न अभिनिवेसए (अभि-निवेस) विधि 3/1 सक अणिच्चं (अणिच्च) 2/1 वि तेसिं (त) 6/2 स विण्णाय (विण्णा) संकृ परिणामं (परिणाम) 2/1 पोग्गलाणं (पोग्गल) 6/2 य (अ)=निस्संदेह

45. पोग्गलाण (पोग्गल) 6/2 परीणामं (परीणाम) 2/1 तेसिं (त) 6/2 णच्चा (णच्चा) संकृ अनि जहा (अ)=जैसा तहा (अ)= वैसा विणीयतण्हो [(विणीय) भूकृ अनि-(तण्ह) 1/1] विहरे

स्त्री
(विहर) विधि 3/1 अक सीईभूएण* [(सीअ→ (सीई)-(भूअ) भूकृ 3/1 अनि] अप्पणा* (अप्पण) 3/1

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

46. जाए (जा) 3/1 स सद्धाए (सद्धा) 3/1 निक्खंतो* (निक्खंत) भूकृ 1/1 अनि परियायट्ठाणमुत्तमं [(परियाय)+(ट्ठाणं)+(उत्तमं)] [(परियाय)-(ट्ठाण)● 2/1] उत्तमं● (उत्तम) 2/1 वि तमेव [(तं)+(एव)] तं (त) 2/1 स अणुपालेज्जा (अणुपाल) विधि 3/1 सक गुणे (गुण) 2/2 आयरियसम्मए [(आयरिय)-(सम्मअ) भूकृ 2/2 अनि]

* यहाँ भूकृ का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ है।

● 'गति' अर्थ की क्रिया के साथ द्वितीया का प्रयोग हुआ है।

47. तवं (तव) 2/1 चिमं [(च)+(इमं)] च*(अ)=और इमं (इम) 2/1 सवि संजमजोगयं [(संजम)-(जोग) 2/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय] सज्झायजोगं [(सज्झाय)-(जोग) 2/1] सया (अ) = सदा अहिट्ठए (अहिट्ठ) व 3/1 सक सूरे (सूर) 1/1 वि व (अ)=जैसे कि सेणाए (सेणा) 3/1 समत्तमाउहे [(समत्तं)+(आउहे)] समत्तं* (समत्त) 2/1 वि आउहे (आउह) 1/1 अलमप्पणो [(अलं)+ अप्पणो)] अलं (अ)=समर्थ अप्पणो (अप्पण) 4/1 होइ (हो) व 3/1 अक परेसिं (पर) 4/2

* कभी-कभी प्रथमा विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137 वृत्ति)।

'और' अर्थ में 'च' कभी-कभी प्रत्येक शब्द के साथ प्रयुक्त किया जाता है।

48. सज्झाय-सज्झाणरयस्स [(सज्झाय)-(सज्झाण)-(रय) 6/1 वि] ताइणो (ताइ) 6/1 वि अपावभावस्स [(अपाव)-(भाव) 6/1] तवे (तंव) 7/1 रयस्स (रय) 6/1 वि विसुज्झई* (विसुज्झ) व 3/1 अक जं (ज) 1/1 सवि से● (अ) = वाक्य की शोभा मलं (मल) 1/1 पुरेकडं (पुरेकड) 1/1 वि समीरियं (समीर) भूकृ 1/1 रुप्पमलं [(रुप्प)-(मल) 1/1] व (अ)=जैसे कि जोइणा (जोइ) 3/1

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

● वाक्य की शोभा (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 624)।

49. थंभा* (थंभ) 5/1 व (अ)=तथा कोहा* (कोह) 5/1 व (अ)= भी मय-प्पमाया [(माया——→मया●→मय※)-(प्पमाय)* 5/1] गुरुस्सगासे [(गुरु)-(स्सगास) 7/1] विणयं (विणय) 2/1 न (अ) =नहीं सिक्खे (सिक्ख) व 3/1 सक सो (त) 1/1 सवि चेव (अ)= ही क (अ) सूचनार्थक तस्स (त) 4/1 स अभूइभावो [(अभूइ)-(भाव) 1/1] फलं (फल) 1/1 व (अ) = जैसे कि कीयस्स (कीय) 6/1 वहाय (वह) 4/1 होइ (हो) व 3/1 अक

* किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली संज्ञा में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

● शब्दों में आदि में रहे हुए 'आ' का विकल्प से 'अ' हुआ करता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-67)।

※. दीर्घ स्वर के आगे यदि संयुक्त अक्षर हो तो उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-84)।

50. जे (ज) 1/2 सवि यावि (अ)=भी मंदे (मंद) 1/1 त्ति (अ)= ऐसा गुरुं (गुरु) 2/1 विइत्ता (विअ) संकृ डहरे (डहर) 1/1 वि इमे (इम) 1/1 सवि अप्पसुए (अप्पसुअ) 1/1 वि त्ति (अ)=

इस प्रकार नच्चा (नच्चा) संकृ अनि हीलंति (हील) व 3/2 सक मिच्छं (मिच्छ) 2/1 वि पडिवज्जमाणा (पडिवज्जमाण) वकृ 1/2 करेंति (कर) व 3/2 सक आसायण (आसायण)* मूलशब्द 2/1 ते (त) 1/2 सवि गुरूणं● (गुरु) 6/2

* किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।

किसी वर्ग को बतलाने के लिए एकवचन अथवा बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है। या बहुवचन का प्रयोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिए भी होता है।

51. जा (ज) 1/1 सवि पावगं (पावग) 2/1 जलियमवक्कमेज्जा [(जलियं) + (अवक्कमेज्जा)] जलियं (जल) भूकृ 2/1 अवक्कमेज्जा (अवक्कम) व 3/1 सक आसीविसं (आसीविस) 2/1 वा (अ) = अथवा वि (अ) = पाद पूर्ति हु (अ) = पाद पूर्ति कोवएज्जा (कोवअ)* प्रेरक अनि व 3/1 सक विसं (विस) 2/1 खायइ (खाय) व 3/1 सक जीवियट्ठी [(जीविय) + (अट्ठी)] [(जीविय)-(अट्ठि) 1/1 वि] एसोवमाऽऽसायणया [(एसा) + (उवमा) + (आसायणया)] एसा (एता) 1/1 वि उवमा (उवमा) 1/1 आसायणया● (आसायणा→आसायणया)⊠ 3/1 अनि गुरूणं (गुरु) 6/2

* कुप्+अय (प्रेरक)=कोपय -> कोवअ -> कोवएज्जा।

● किसी वर्ग को बतलाने में एकवचन अथवा बहुवचन का प्रयोग किया जा जा सकता है या बहुवचन का प्रयोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिए भी होता है।

⊠ कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-137)।

52. ह्निया (अ)=संभव हु (अ)=किन्तु से* (अ)=वाक्य की शोभा पावयं● (पावय) मूल शब्द 1/1 नो (अ)=न डहेज्जा (डह) विधि 3/1 सक आसीविसो (आसीविस) 1/1 वा (अ)=अथवा कुविओ (कुविअ) 1/1 वि न (अ)=न भक्खे (भक्ख) विधि 3/1 सक विसं (विस) 1/1 हालहलं (हालहल) 1/1 मारे (मार) विधि 3/1 सक यावि (अ)=ही मोक्खो (मोक्ख) 1/1 गुरुहीलणाए [(गुरु)-
स्त्री
हीलण—→हीलणा⊠ 3/1]

● कर्ता कारक के स्थान पर मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)।

* पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 624।

⊠ किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

53. जो (ज) 1/1 सवि पव्वयं (पव्वय) 2/1 सिरसा (सिर) 3/1 भेत्तुमिच्छे [(भेत्तुं)+(इच्छे)] भेत्तुं* (भेत्तुं) हेकृ अनि इच्छे (इच्छ) व 3/1 सक सुत्तं (सुत्त) भूकृ 2/1 अनि व (अ)=अथवा सीहं (सीह) 2/1 पडिबोहएज्जा (पडिबोहअ)● प्रेरक अनि व 3/1 सक वा (अ)=अथवा दए⊠ (दा) व 3/1 सक सत्तिअग्गे [(सत्ति)-(अग्ग) 7/1] पहारं (पहार) 2/1 एसोवमाऽऽसायणया [(एसा)+(उवमा)+(आसायणया)] एसा (एता) 1/1 सवि उवमा (उवमा) 1/1 आसायणा卐 (आसायणा→आसायणया) 3/1 अनि गुरूणं£ (गुरु) 6/2

* 'इच्छा' अर्थ के साथ हेकृ का प्रयोग होता है।

● बुध्+अय (प्रेरक)=बोधय → बोहअ → बोहएज्जा।

⊠ दा → दत्ते → दए।

£ किसी वर्ग को बतलाने में एकवचन अथवा बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है या बहुवचन का प्रयोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिए भी होता है।

卐 कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-137)।

54. सिया (अ) = संभव हु (अ) = पाद पूर्ति सीसेण (सीस) 3/1 गिरिं (गिरि) 2/1 पि (अ) = भी भिंदे (भिंद) विधि 3/1 सक हु (अ) = पाद पूर्ति सीहो (सीह) 1/1 कुविओ (कुविअ) 1/1 वि न (अ) = न भक्खे (भक्ख) विधि 3/1 सक न (अ) = न भिंदेज्ज (भिंद) विधि 3/1 सक व (अ) = भी सत्तिअग्गं [(सत्ति)–(अग्ग) 1/1] यावि (अ) = ही मोक्खो (मोक्ख) 1/1 गुरुहीलणाए [(गुरु)–
स्त्री
(हीलण*––→हीलणा) 3/1]

* किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है।

55. आयरियपाया* (आयरियपाय) 1/2 पुण (अ) = पाद पूर्ति अप्पसन्ना (अप्पसन्न) 1/2 वि अबोहि• (अबोहि) मूल शब्द 1/1 आसायण• (आसायण) मूल शब्द 1/1 नत्थि (अ) = नहीं मोक्खो (मोक्ख) 1/1 तम्हा (अ) = इसलिए आणाबाहसुहाभिकंखी [(आणाबाह) + (सुह) + (अभिकंखी)] [(अण + आबाह→अणाबाह→आणाबाह)⊠ –(सुह)–(अभिकंखि) 1/1 वि] गुरुप्पसायाभिमुहो [(गुरु) + (प्पसाय) + (अभिमुहो)] [(गुरु)–(प्पसाय)–(अभिमुह) 1/1 वि] रमेज्जा (रम) विधि 3/1 अक

* अतिशय आदर व्यक्त करने के लिए कर्तृ कारक का बहुवचनान्त रूप व्यक्तियों की उपाधियों या नामों के साथ जोड़ दिया जाता है।

• कर्ताकारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है।

⊠ समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर ह्रस्व के स्थान में दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं। यहाँ अण → आण हुआ है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 1-4)।

56. जस्संतिए [(जस्स) + (अंतिए)] जस्स (ज) 6/1 स अंतिए (अंतिअ) 7/1 धम्मपयाइं [(धम्म)–(पय) 2/2] सिक्खे* (सिक्ख) व

3/1 सक तस्संतिए [(तस्स) + (अंतिए)] तस्स (त) 6/1 स अंतिए (अंतिअ) 7/1 वेणइयं (वेणइय) 2/1 पउंजे* (पउंज) विधि 3/1 सक सक्कारए⊠ (सक्कार) विधि 2/1 सक सिरसा (सिर) 3/1 पंजलीओ (पंजलि) 5/1 काय⊞ (काय) मूल शब्द 3/1 गिरा (गिरा) 3/1 अनि भो (अ)=ओ! मणसा (मण) 3/1 य (अ)= तथा निच्चं (अ)=सदा

* पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 672।
● प्रा. भा. व्या. पृष्ठ 683।
⊠ प्रा. भा. व्या. पृष्ठ 681।
⊞ किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। (प्रा. भा. व्या., पृष्ठ 517)।

57. लज्जा (लज्जा) 1/1 दया (दया) 1/1 संजम* (संजम) मूल शब्द 1/1 बंभचेरं (बंभचेर) 1/1 कल्लाणभागिस्स [(कल्लाण)-(भागि) 4/1 वि] विसोहिठाणं [(विसोहि)-(ठाण) 1/1] जे● (ज) 1/2 सवि मे⊠ (अम्ह) 7/1 स गुरू● (गुरु) 1/2 सययमणुसासयंति [(सययं) + (अणुसासयंति)] सययं (अ)=सदैव अणुसासयंति (अणुसासय) प्रेरक अनि व 3/2 सक ते● (त) 2/2 सवि हं (अम्ह) 1/1 स गुरू● (गुरु) 2/2 सययं (अ)=सदैव पूययामि (पूययामि) व 1/1 सक अनि

* कर्ता कारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है।
● यहाँ बहुवचन का प्रयोग सम्मान के लिए हुआ है।
⊠ कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)।

58. जहा (अ)=जैसे निसंते (निसंत) 7/1 तवणऽच्चिमाली [(तवण) + (अच्चि) + (माली)] [(तवण)-(अच्चि)-(मालि) 1/1 वि]

पभासई* (पभास) व 3/1 सक केवलं (केवल) 2/1 वि भारहं (भारह) 2/1 तु (अ) =और एवाऽऽयरिओ [(एव) + (आयरिओ)] एव (अ) =वैसे ही. आयरिओ (आयरिअ) 1/1 सुय-सील-बुद्धिए [(सुय)-(सील)-(बुद्धि)• 3/1] विरायई* (विराय) व 3/1 अक सुरमज्झे [(सुर)-(मज्झ) 7/1] व (अ) =जैसे इंदो (इंद) 1/1

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
• (आर्ष प्रयोग) या कविता में 'इ' और 'उ' कभी-कभी दीर्घ नहीं होते, बल्कि जैसे के तैसे रह जाते हैं। (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 181)।

59. जहा (अ) =जैसे. ससी (ससि) 1/1 कोमुइजोगजुत्ते [(कोमुइ)•-(जोग)-(जुत्त) 1/1 वि] नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा [(नक्खत्त) + (तारा) + (गण) + (परिवुड) + (अप्पा)] [(नक्खत्त)-(तारा) -(गण)-(परिवुड)-(अप्प) 1/1] खे (ख) 7/1 सोहई* (सोह) व 3/1 अक विमले (विमल) 7/1 वि अब्भमुक्के [(अब्भ)-(मुक्क) 7/1 वि] एवं (अ) =वैसे ही गणी (गणि) 1/1 सोहइ (सोह) व 3/1 अक भिक्खुमज्झे [(भिक्खु)-(मज्झ) 7/1]

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
• समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण. 1-4)।

60. महागरा [(मह) + (आगरा)] [(मह) वि-(आगर) 1/2] आयरिया (आयरिय) 1/2 महेसी [(मह) + (एसी)] [(मह) वि-(एसि) 1/2 वि] समाहिजोगे [(समाहि)-(जोग) 7/1] सुय-सील-बुद्धिए* [(सुय)-(सील)-(बुद्धि) 3/1] संपाविउ (संपाव) हेकृ कामे• (काम) 1/1 वि अणुत्तराइं (अणुत्तर) 1/2 वि आराहए (आराह) विधि 3/1 सक तोसए (तोस) विधि 3/1 सक धम्मकामी [(धम्म)-(कामि) 1/1 वि]

* कविता में 'इ' और 'उ' कभी-कभी दीर्घ नहीं होते, बल्कि जैसे के तैसे रह जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 181)।
• प्राय: हेत्वर्थ कृदन्त के साथ प्रयुक्त।

61. मूलाओ (मूल) 5/1 खंधप्पभवो [(खंध)-(प्पभव)* 1/1 वि] दुमस्स (दुम) 6/1 खंधाओ (खंध) 5/1 पच्छा (अ)=बाद में समुवेंति (समुवे) व 3/2 सक साला (साला) 2/2 साह• (साहा) मूल शब्द 5/2⊠ प्पसाहा (प्पसाहा) 1/2 विरुहंति (विरुह) व 3/2 अक पत्ता (पत्त) 1/2 तओ (अ)=बाद में से (त) 6/1 स पुप्फं (पुप्फ) 1/1 च (अ)=और फलं (फल) 1/1 रसो (रस) 1/1 य (अ)=और

* समास के अन्त में इसका अर्थ 'उत्पन्न' होता है। यह विशेषण होता है।

• साहा → साह आगे संयुक्त अक्षर आने से दीर्घ का ह्रस्व हुआ है (हेम प्राकृत व्याकरण, 1-84)। यहां मूल शब्द ही रहा है। किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ 517)।

⊠ उत्पन्न होना या निकलना अर्थ में पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

62. एवं (अ)=इसी प्रकार धम्मस्स (धम्म) 6/1 विणओ (विणअ) 1/1 मूलं (मूल) 1/1 परमो (परम) 1/1 वि से (त) 6/1 स मोक्खो (मोक्ख) 1/1 जेण (अ)=जिससे किर्त्ति (कित्ति) 2/1 सुयं (सुय) 2/1 सग्घं (सग्घ) 2/1 वि निस्सेसं (निस्सेस) 2/1 वि चाभिगच्छई [(च)+(अभिगच्छई)] च (अ)=और. अभिगच्छई* (अभिगच्छ) व 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

63. जे (ज) 1/1 सवि य (अ)=और चंडे (चंड) 1/1 वि मिए (मिअ) 1/1 वि थद्धे (थद्ध) 1/1 वि दुव्वाई (दुव्वाइ) 1/1 वि नियडीसढे [(नियडी) वि-(सढ) 1/1 वि] वुब्भई* (वुब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि से (त) 1/1 सवि अविणीयप्पा [(अविणीय)+(अप्पा)]

[(अविणीय) वि-(अप्प) 1/1] कट्ठं (कट्ठ) 1/1 सोयगयं [(सोय) -(गय) 1/1 वि] जहा (अ)=जैसे कि

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

64. विणयं* (विणय) 2/1 पि (अ)=भी जो (ज) 1/1 सवि उवाएण (उवाअ) 3/1 चोइओ (चोअ) भूकृ 1/1 कुप्पई• (कुप्प) व 3/1 अक नरो (नर) 1/1 दिव्वं (दिव्व) 2/1 वि सो (त) 1/1 सवि सिरिमेज्जंतिं [(सिरिं)+(एज्जंतिं)] सिरिं (सिरी) 2/1 एज्जंतिं
स्त्री
(ए → एज्ज → एज्जंत→ एज्जंती) वकृ 2/1 दंडेण (दंड) 3/1 पडिसेहए (पडिसेह) व 3/1 सक

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

• छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

65. तहेव (अ)=उसी प्रकार अविणीयप्पा [(अविणीय)+(अप्पा)] [(अविणीय) वि-(अप्प) 1/2] उववज्झा (उववज्झ) 1/2 वि हया (हय) 1/2 गया (गय) 1/2 दीसंति (दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि दुहमेहंता [(दुहं)+(एहंता)] दुहं* (दुह) 2/1 एहंता (एह) वकृ 1/2 आभिओगमुवट्ठिया [(आभिओगं)+(उवट्ठिया)] आभिओगं* (आभिओग) 2/1 उवट्ठिया (उवट्ठिय) भूकृ 1/2 अनि

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

66. तहेव (अ)=उसी प्रकार सुविणीयप्पा [(सुविणीय)+(अप्पा)] [(सुविणीय) वि-(अप्प) 1/2] उववज्झा (उववज्झ) 1/2 वि हया (हय) 1/2 गया (गय) 1/2 दीसंति (दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि सुहमेहंता [(सुहं)+(एहंता)] सुहं* (सुह) 2/1 एहंता (एह) वकृ

1/2 इड्ढि (इड्ढि) 2/1 पत्ता•. (पत्त) भूकृ 1/2 अनि महायसा⊠ [(महा)–(यस) 5/1]

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)।
• यहाँ भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ है।
⊠ 'कारण' अर्थ में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।

67. तहेव (अ) = उसी प्रकार सुविणीयप्पा [(सुविणीय) + (अप्पा)] [(सुविणीय) वि–(अप्प) 1/2] लोगंसि (लोग) 7/1 नर-नारिओ* [(नर)–(नारी) 1/2] दीसंति (दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि सुहमेहंता [(सुहं) + (एहंता)] सुहं• 2/1 एहंता (एह) वकृ 1/2 इड्ढि (इड्ढि) 2/1 पत्ता⊠ (पत्त) भूकृ 1/2 अनि महायसा£ [(महा)–(यस) 5/1]

* नारीओ → नारिओ, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल: प्रा. भा. व्या. पृष्ठ 182)।
• कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।
⊠ यहाँ भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ है।
£ 'कारण' अर्थ में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है।

68. जे (ज) 1/2 सवि आयरिय-उवज्झायाणं* [(आयरिय)–(उवज्झाय) 6/2] सुस्सूसावयणंकरा [(सुस्सूसा)–(वयणं)•–(कर)⊠ 1/2 वि] तेसिं (त) 6/2 सिक्खा (सिक्खा 1/2 पवड्ढंति (पवड्ढ) व 3/2 अक जलसित्ता [(जल)–(सित्त) भूकृ 1/2 अनि] इव (अ) = जैसे कि पायवा (पायव) 1/2

* यहाँ द्वन्द्व समास के कारण बहुवचन हुआ है।
• यहाँ अनुस्वार का आगम हुआ है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-26 वृत्ति सहित)।
⊠ समास के अन्त में 'कर' का अर्थ 'करने वाला' होता है।

69. **दुग्गओ** (दुग्गअ) 1/1 **वा** (अ)=जैसे **पओएणं** (पओअ) 3/1 **चोइओ** (चोअ) भूकृ 1/1 **वहई*** (वह) व 3/1 सक **रहं** (रह) 2/1 **एवं** (अ)=इसी प्रकार **दुब्बुद्धि●** (दुब्बुद्धि) मूल शब्द 1/1 **किच्चाणं**⊠ (किच्च) 6/2 **वुत्तो** (वुत्त) भूकृ 1/1 अनि **पकुव्वई£** (पकुव्व) व 3/1 सक

● किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है (पिशलः प्रा. भा. व्या. पृष्ठ, 517)।

⊠ कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)।

£ पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 138)।

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

70. **विवत्ती** (विवत्ति) 1/1 **अविणीयस्स** (अ-विणीय) 6/1 वि **संपत्ती** (संपत्ति) 1/1 **विणीयस्स** (विणीय) 6/1 वि **य** (अ)=और **जस्सेयं** [(जस्स)+(एयं)] जस्स* (ज) 6/1 एयं (एय) 1/1 सवि **दुहओ** (अ)=दोनों प्रकार से **नायं** (नाय) भूकृ 1/1 अनि **सिक्खं** (सिक्खा) 2/1 **से** (त) 1/1 सवि **अभिगच्छई●** (अभिगच्छइ) व 3/1 सक

* कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)।

● पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' क्रियापदों में 'ई' हो जाती है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

71. **जे** (अ) 1/1 सवि **यावि** (अ)=भी **चंडे** (चंड) 1/1 वि **मइइड्ढि-गारवे** [(मइ)-(इड्ढि)-(गारव) 1/1] **पिसुणे** (पिसुण) 1/1 वि **नरे** (नर) 1/1 **साहस*** (साहस) मूल शब्द 1/1 वि **हीणपेसणे** [(हीण) वि-(पेसण) 1/1] **अदिट्ठधम्मे** [(अदिट्ठ) वि-(धम्म) 1/1] **विणए** (विणअ) 7/1 **अकोविए** (अ-कोविअ) 1/1 वि

असंविभागी (असंविभागि) 1/1 वि न (अ)=नहीं हु (अ)= निश्चय ही. तस्स (त) 4/1 स मोक्खो (मोक्ख) 1/1

साहस=Over-hasty (उतावला) (Monier Williams, Sans.-Eng. Dict. P. 1212 Col. II)।

किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।

72. निद्देसवत्ती [(निद्देस)-(वत्ति) 1/2 वि] पुण (अ)=इसके विपरीत जे (ज) 1/2 सवि गुरूणं* (गुरु) 6/2 सुयत्थधम्मा [(सुय)+(अत्थ)+(धम्मा)] [(सुय) वि-(अत्थ)-(धम्म) 1/2] विणयम्मि (विणय) 7/1 कोविया (कोविय) 1/2 वि तरित्तु (तर) संकृ ते (त) 1/2 सवि ओहमिणं [(ओहं)+(इणं)] ओहं (ओह) 2/1 इणं (इम) 2/1 सवि दुरुत्तरं (दुरुत्तर) 2/1 वि खवित्तु (खव) संकृ कम्मं (कम्म) 2/1 गइमुत्तमं](गइं)+(उत्तमं)] गइं (गइ) 2/1 उत्तमं (उत्तम) 2/1 वि गय• (गय) मूल शब्द भूकृ 1/2 अनि

* किसी वर्ग विशेष का बोध कराने के लिए एक वचन अथवा बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है या आदर व्यक्त करने के लिए बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है।

• किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (प्रा. भा. व्या. पृ. 517)। यह नियम विशेषण के लिए भी लागू किया जा सकता है।

73. आयारमट्ठा [(आयारं)+(अट्ठा)] आयारं (आयार) 2/1 अट्ठा (अट्ठा) 1/1 विणयं (विणय) 2/1 पउंजे (पउंज) व. 3/1 सक सुस्सूसमाणो (सुस्सूस) वकृ 1/1 परिगिज्झ (परिगिज्झ) संकृ अनि वक्कं (वक्क) 2/1 जहोवइट्ठं (अ)=जैसा कि कहा गया है. अभिकंखमाणो (अभिकंख) वकृ 1/1 गुरुं (गुरु) 2/1 तु (अ) =तथा नाऽऽसाययई [(ना)+(आसाययई)] ना (अ)=नहीं

आसाययइ* (आसाययइ) व 3/1 सक अनि स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

74. सक्का* (सक्क) विधि कृ 1/2 अनि सहेउं* (सह) हेकृ आसाए (आसा) 3/1 कंटया (कंटय) 1/2 अओमया (अओमय) 1/2 वि उच्छहया● (उच्छहय) 5/1 स्वार्थिक 'य' नरेणं (नर) 3/1 अणासए⊠ (अण-आसा) 3/1 जो (ज) 1/1 सवि उ (अ)=किन्तु सहेज्ज (सह) व 3/1 सक कंटए (कंटअ) 2/2 वईमए (वईमअ) 2/2 वि कण्णसरे [(कण्ण)-(सर) 2/2] स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि.

* प्रायः हेत्वर्थ कृदन्त (कर्मणि अर्थ में) के साथ प्रयुक्त (Monier Williams, Sans.-Eng. Dict. P. 1045)।

● उच्छाह → उच्छह (यहां 'आ' का विकल्प से 'अ' हुआ है)। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-67)। 'कारण' व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी विभक्ति होती है।

⊠ अणासाए → अणासए : विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)।

75. मुहुत्तदुक्खा [(मुहुत्त)-(दुक्ख) 1/2 वि] हु (अ)=ही हवंति (हव) व 3/2 अक कंटया (कंटय) 1/2 अओमया (अओमय) 1/2 वि ते (त) 1/2 सवि वि (अ)=तथा तओ (अ)=बाद में सुउद्धरा (सुउद्धर) 1/2 वि वायादुरुत्ताणि [(वाया)-(दुरुत्त) 1/2] दुरुद्धराणि(दुरुद्धर) 1/2 वि वेराणुबंधीणि [(वेर)+(अणुबंधीणि)] [(वेर)-(अणुबंधि) 1/2 वि महब्भयाणि (महब्भय) 1/2 वि

76. समावयंता (समावय) वकृ 1/2 वयणाभिघाया [(वयण)+(अभिघाया)] [(वयण)-(अभिघाय) 1/2] कण्णंगया [(कण्णं)*-(गय) भूकृ 1/2 अनि] दुम्मणियं (दुम्मणिय) 2/1 जणंति (जण)

व 3/2 सक धम्मो (धम्म) 1/1 त्ति (अ) = इस प्रकार किच्चा (किच्चा) संकृ अनि परमग्गसूरे [(परम) + (अग्ग) + (सूर)] [(परम)-(अग्ग)-(सूर) 1/1 वि] जिइंदिए (जिइंदिअ) 1/1 वि जो (ज) 1/1 सवि सहई● (सह) व 3/1 सक स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

* यहां अनुस्वार का आगम हुआ है (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-26 वृत्ति सहित)।

● छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

77. अवण्णवायं [(अवण्ण)-(वाय) 2/1] च (अ) = भी परम्मुहस्स (परम्मुह्) 4/1 वि पच्चक्खओ (क्रिविअ) = सार्वजनिक रूप से पडिणीयं (पडिणीया) 2/1 वि च (अं) = बिल्कुल भासं (भासा) 2/1 ओहारिणि (ओहारिणी) 2/1 वि अप्पियकारिणि (अप्पिय-कारिणी) 2/1 वि च (अ) = और भासं (भासा) 2/1 न (अ) = नहीं भासेज्ज (भास) व 3/1 सक सया (अ) = सदा स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

78. अलोलुए (अलोलुए) 1/1 वि अक्कुहए (अक्कुहअ) 1/1 वि अमायी (अमायि) 1/1 वि अपिसुणे (अपिसुण) 1/1 वि यावि (अ) = और अदीणवित्ती [(अदीण)-(वित्ति) 1/1] नो (अ) = नहीं भावए
प्रेरक
(भव → भावय → भावअ) प्रेरक अनि व 3/1 सक नो वि (अ) = कभी नहीं य (अ) = और भावियप्पा [(भाविय) + (अप्पा)] [(भाविय) भूकृ-(अप्प) 1/1] अकोउहल्ले (अकोउहल्ल) 1/1 य (अ) = और सया (अ) = सदा स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

79. गुणेहिं* (गुण) 3/2 साहू (साहु) 1/1 अगुणेहऽसाहू [(अगुणे) + (ह) + (असाहू)] अगुणे● (अगुण) 7/1 ह (अ) = ही. असाहू

(असाहु) 1/1 गेण्हाहि[⊠] (गेण्ह) आज्ञा 2/1 सक साहूगुण [(साहू£)-(गुण) मूल शब्द 2/2] मुंचऽसाहू [(मुंच)+(असाहू)] मुंच[⊠] (मुंच) आज्ञा 2/1 सक. असाहु (असाहु) 1/1 वियाणिया[$] (वियाण) संकृ. अप्पगमप्पएणं [(अप्पगं)+(अप्पएणं)] अप्पगं (अप्प) स्वार्थिक 'ग' 2/1 अप्पएणं (अप्प) 'अ' स्वार्थिक 3/1 जो (ज) 1/1 सवि राग-दोसेहिं* [(राग)-(दोस) 3/2] समो (सम) 1/1 वि स (त) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

* 'कारण' व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है।

● कभी-कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135) तथा वर्ग विशेष का बोध कराने के लिए एकवचन तथा बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है।

⊠ पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 689।

£ समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाते हैं, (यहाँ साहु → साहू हुआ है) (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4)।

$ पिशल: प्रा. भा. व्या, पृष्ठ 834. 837, 838।

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

80. तहेव (अ)=उसी प्रकार डहरं (डहर) 2/1 व (अ)=अथवा महल्लगं (महल्ल) स्वार्थिक 'ग' 2/1 वा (अ)=अथवा इत्थी*(इत्थी) मूल शब्द 2/1 पुमं (पुम) 2/1 पव्वइयं (पव्वइय) 2/1 गिहिं (गिहि) 2/1 वा (अ)=अथवा नो (अ)=नहीं हीलए (हील) व 3/1 सक प्रेरक नो (अ)=नहीं वि (अ)=कभी य (अ) तथा खिसएज्जा (खिस→खिसय → खिसअ) प्रेरक अनि व 3/1 सक थंभं (थंभ) 2/1 च (अ)=और कोहं (कोह) 2/1 चए (चअ) व 3/1 सक स (स) 1/1 सवि पुज्जो (पुज्ज) 1/1 वि

* किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।

81. विणए (विणअ) 7/1 सुए (सुअ) 7/1 तवे (तव) 7/1 य (अ) =और आयारे (आयार) 7/1 निच्चं (अ)=सदा पंडिया (पंडिय)
प्रेरक
1/2 वि अभिरामयंति (अभिरम——→अभिरामय) प्रेरक अनि व 3/2 सक अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 जे (ज) 1/2 सवि भवंति (भव) व 3/2 अक जिइंदिया (जिइंदिय) 1/2 वि

82. पेहेइ (पेह) व 3/1 सक हियाणुसासणं [(हिय)+ (अणुसासणं)] [(हिय) वि-(अणुसासण) 2/1] सुस्सूसई (सुस्सूस) व 3/1 सक तं (त) 2/1 सवि च (अ)=और पुणो (अ)=फिर अहिट्ठए (अहिट्ठ) व 3/1 सक न (अ)=नहीं य (अ)=तथा माणमएण [(माण)-(मअ) 3/1] मज्जई* (मज्ज) व 3/1 अक विणयसमाही [(विणय)-(समाहि) 1/1] आययट्ठिए [(आयय)-(अट्ठिअ) 1/1 वि]

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

83. नाणमेगग्गचित्तो [(नाणं)+(एगग्गचित्तो)] नाणं (नाण) 2/1 एगग्गचित्तो (एगग्गचित्त) 1/1 वि य (अ)=और ठिओ (ठिअ)
भूकृ 1/1 अनि ठावयई* (ठव——→ठावय) प्रेरक अनि व 3/1 सक परं (पर) 2/1 वि सुयाणि (सुय) 2/2 य (अ)=और अहिज्जित्ता (अहिज्ज) संकृ रओ (रअ) 1/1 वि सुयसमाहिए• [(सुय)-(समाहि) 7/1]

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

• समाहीए→ समाहिए, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व कर दिये जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)।

84. विविहगुणतवोरए [(विविह)-(गुण)-(तवोरअ) 1/1] य (अ) = तथा निच्चं (अ) = सदा भवइ (भव) व 3/1 अक निरासए (निरासअ) स्वार्थिक 'अ' 1/1 वि निज्जरट्ठिए [(निज्जरा) + (अट्ठिए)] [(निज्जरा)-(अट्ठिअ) 1/1 वि] तवसा (तव) 3/1 धुणइ (धुण) व 3/1 सक पुराणपावगं [(पुराण)-(पावग) 2/1] जुत्तो (जुत्त) 1/1 वि सया (अ) = सदा तवसमाहिए* [(तव)-(समाहि) 7/1]

* समाहीए → समाहिए, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व कर दिये जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 182)।

85. जिणवयणरए [(जिण)-(वयण)-(रअ) 1/1 वि] अतितिणे (अ-तितिण) 1/1 वि पडिपुण्णाययमाययट्ठिए [(पडिपुण्ण) + (आययं) + (आयय) + (अट्ठिए)] [(पडिपुण्ण)-(आययं)* 2/1 'य' स्वार्थिक] [(आयय)-(अट्ठिअ) 1/1 वि] आयारसमाहिसंवुडे [(आयार)-(समाहि)-(संवुडे) 1/1 वि] भवइ (भव) व 3/1 अक य (अ) = और दंते (दंत) 1/1 वि भावसंधए [(भाव)-(संधअ) 1/1 वि]

* कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)।

86. अभिगम (अभिगम) मूल शब्द 3/1 चउरो (चउ) 2/2 वि समाहिओ* (समाहि) 2/2 सुविसुद्धो (सुविसुद्ध) 1/1 वि सुसमाहियप्पओ [(सुसमाहिय)-(अप्पअ) स्वार्थिक 'अ' 1/1] विउलहियसुहावहं [(विउल) वि-(हिय)-(सुहावह) 2/1 वि] पुणो (अ) = तथा कुव्वइ (कुव्व) व 3/1 सक सो (त) 1/1 सवि पयखेममप्पणो [(पयखेमं) + (अप्पणो)] पयखेमं (पयखेम) 2/1 अप्पणो (अप्प) 4/1

* समाहीओ→समाहिओ, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व कर दिये जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 182)।

87. **सम्मदिट्ठी** (सम्मदिट्ठि) 1/1 वि **सया** (अ)=सदा **अमूढे** (अ-मूढ) 1/1 वि **अत्थि** (अ)=है. **हु** (अ)=ही **नाणे** (नाण) 7/1 **तवे** (तव) 7/1 **य** (अ)=और **संजमे** (संजम) 7/1 **तवसा** (तव) 3/1 **धुणई** (धुण) व 3/1 सक **पुराणपावगं** [(पुराण) वि-(पावग) 2/1] **मण-वय-कायसुसंवुडे** [(मण)-(वय)-(काय)-(सु-संवुड) 1/1 वि] **जे** (ज) 1/1 सवि **स** (त) 1/1 सवि **भिक्खू** (भिक्खु) 1/1

88. **न** (अ)=नहीं **य** (अ)=बिल्कुल **वुग्गहियं** (वुग्गहिय) 2/1 वि **कहं** (कहा) 2/1 **कहेज्जा** (कह) व 3/1 सक **कुप्पे** (कुप्प) व 3/1 सक **निहुइंदिए** [(निहुअ)+(इंदिए)] [निहुअ) वि-(इंदिअ) 1/1] **पसंते** (पसंत) 1/1 वि **संजमधुवजोगजुत्ते** [(संजम)-(धुव)-(जोग) (जुत्त) 1/1 वि] **उवसंते** (उवसंत) 1/1 वि **अविहेडए** (अविहेडअ) 1/1 वि **जे** (ज) 1/1 सवि **स** (त) 1/1 सवि. **भिक्खू** (भिक्खू) 1/1

89. **हत्थसंजए** [(हत्थ)-(संजअ) 1/1 वि] **पायसंजए** [(पाय)-(संजअ) 1/1 वि] **वायसंजए** [(वाय)-(संजअ) 1/1 वि] **संजइंदिए** [(संजअ)+(इंदिए)] [(संजअ) वि-(इंदिए) 1/1] **अज्झप्परए** [अज्झप्प)-(रअ) 1/1 वि] **सुसमाहियप्पा** [(सुसमाहिय)+(अप्पा)] [सु-समाहिय) वि-(अप्प) 1/1] **सुत्तत्थं** [(सुत्त)+(अत्थं)] [(सुत्त)-(अत्थ) 2/1] **च** (अ)=तथा **वियाणई*** (वियाण) व 3/1 सक **जे** (ज) 1/1 सवि **स** (त) 1/1 सवि **भिक्खू** (भिक्खु) 1/1

* छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' को किया गया है।

90. **अलोलो** (अलोल) 1/1 वि **भिक्खू** (भिक्खु) 1/1 **न** (अ)=नहीं **रसेसु** (रस) 7/2 **गिद्धे** (गिद्ध) 1/1 वि **उंछं*** (उंछ) 2/1 **चरे*** (चर) व 3/1 सक **जीविय●** (जीविय) मूल शब्द 2/1 **नाभिकंखे**

[(न) + (अभिकंखे)] न (अ) = नहीं अभिकंखे (अभिकंख) व 3/1 सक इड्ढि (इड्ढि) 2/1 च (अ) = तथा सक्कारण● (सक्कारण) मूल शब्द 2/1 पूयणं (पूयण) 2/1 च (अ) = एवं चए (चअ) व 3/1 सक ठियप्पा (ठियप्प) 1/1 वि अणिहे (अणिह) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि स (त) 1/1 सवि भिक्खू (भिक्खु) 1/1

* 'गति' अर्थ की क्रिया के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

● किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है।

91. न (अ) = नहीं परं (पर) 2/1 वि वएज्जासि (वअ) विधि 2/1 सक अयं (इम) 1/1 सवि कुसीले (कुसील) 1/1 वि जेणऽन्नो [(जेण) + (अन्नो)] जेण (अ) = जिससे अन्नो (अन्न) 1/1 वि कुप्पेज्ज (कुप्प) विधि 3/1 अक तं (त) 2/1 सवि वएज्जा (वअ) विधि 2/1 सक जाणिय (जाण) संकृ पत्तेय* (अ) = अलग-अलग पुण्ण-पावं [(पुण्ण)-(पाव) 2/1] अत्ताणं (अत्ताण) 2/1 समुक्कसे (समुक्कस) व 3/1 सक जे (ज) 1/1 सवि स (त) 1/1 सवि भिक्खू (भिक्खु) 1/1

* यहाँ अनुस्वार का लोप हुआ है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-29)।

92. न (अ) = नहीं जाइमत्ते [(जाइ)-(मत्त) 1/1 वि] य (अ) = और रूवमत्ते [(रूव)-(मत्त) 1/1 वि] लाभमत्ते [(लाभ)-(मत्त) 1/1 वि] सुएण* (सुअ) 3/1 मत्ते (मत्त) 1/1 वि मयाणि (मय) 2/2 सव्वाणि (सव्व) 2/2 वि विवज्जइत्ता (विवज्ज) संकृ धम्मज्झाणरए [(धम्मज्झाण)-(रअ) 1/1 वि] य (अ) = तथा जे (ज) 1/1 सवि स (स) 1/1 सवि भिक्खू (भिक्खु) 1/1

* 'कारण' व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी का प्रयोग होता है।

93. तं (त) 2/1 सवि देहवासं [(देह)-(वास) 2/1] असुइं (असुइ) 2/1 वि असासयं (असासय) 2/1 वि सया (अ) = सदा चए (चअ) व 3/1 सक निच्चहियट्ठियप्पा [(निच्च) वि-(हिय)-(ट्ठियप्प) 1/1

वि] छिंदित्त (छिंद) संकृ जाईमरणस्स [(जाई)*-(मरण) 6/1]
बंधणं (बंधण) 2/1 उवेइ (उवे) व 3/1 सक भिक्खु● (भिक्खु) मूल शब्द 1/1 अपुणागमं (अपुणागम) 2/1 गइं (गइ) 2/1

* जाइ → जाई, समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण 1-4)।

● कर्ताकारक के स्थान में मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)।

94. जया (अ)=जब य (अ)=सर्वथा चयई* (चय) व 3/1 सक धम्मं (धम्म) 2/1 अणज्जो (अणज्ज) 1/1 वि भोगकारणा [(भोग)-(कारण) 5/1] से (त) 1/1 सवि तत्थ (त) 7/1 स मुच्छिए (मुच्छिअ) 1/1 वि बाले (बाल) 1/1 वि आयइं (आयइ) 2/1 नावबुज्झई [(न)+(अवबुज्झई)] न (अ)=नहीं अवबुज्झई● (अवबुज्झ) व 3/1 सक

* पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

● छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

95. इहेवऽधम्मो [(इह)+(एव)+(अधम्मो)] इह (अ)=इस लोक में एव (अ)=भी अधम्मो (अधम्म) 1/1 वि अयसो (अयस) 1/1 वि अकित्ती (अ-कित्ति) 1/1 वि दुन्नामधेज्जं [(दुन्नाम) वि-(धेज्ज) विधि-कृ 1/1 अनि] च (अ)=और पिहुज्जणम्मि (पिहुज्जण) 7/1 चुयस्स (चुय) भूकृ 6/1 अनि धम्माओ (धम्म) 5/1 अहम्मसेविणो [(अहम्म)-(सेवि) 6/1] संभिन्नवित्तस्स (संभिन्नवित्त) 6/1 वि य (अ)=तथा हेट्ठओ (क्रिविअ)=नीचे की ओर गई (गइ) 1/1

96. भुंजित्तु (भुंज) संकृ भोगाइं (भोग) 2/2 पसज्झ (अ)=अत्यधिक चेयसा (चेय) 3/1 तहाविहं (अ)=इसी भांति कट्टु (अ)=करके या कट्टु (कट्टु) संकृ अनि असंजमं (असंजम) 2/1 बहुं* (अ)= बहुतायत से गइं (गइ) 2/1 च (अ)=और गच्छे (गच्छ) व 3/1 सक अणभिज्झियं (अण-अभिज्झिय) 2/1 वि दुहं (दुह) 2/1 बोही (बोहि) 1/1 य (अ)=तथा से (त) 4/1 स. नो (अ)=नहीं
स्त्री
सुलभा (सुलभ-→सुलभा) 1/1 वि पुणो पुणो(अ)=बार-बार

* बहु → बहुं, यहाँ अनुस्वार का आगम हुआ है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-26)।

97. जस्सेवमप्पा [(जस्स)+(एवं)+(अप्पा)] जस्स (ज) 6/1 स एवं (अ)=इस प्रकार अप्पा (अप्प) 1/1 उ (अ)=ही हवेज्ज (हव) व 3/1 अक निच्छिअो (निच्छिअ) 1/1 वि चएज्ज (चअ) भवि 1/1 सक देहं (देह) 2/1 न (अ)=नहीं उ (अ)=किन्तु धम्मसासणं [(धम्म)-(सासण) 2/1] तं (अ)=तो तारिसं (तारिस) 2/1 वि नों (अ)=नहीं पयलेंति* (पयल) व 3/2 सक इंदिया (इंदिय) 1/2 वि उवेंतवाया [(उवेंत) वकृ-(वाया)• 1/1] व (अ)=जैसे कि सुदंसणं (सुदंसण) 2/1 गिरिं (गिरि) 2/1

* यहाँ वर्तमान काल का प्रयोग 'विधि' अर्थ में हुआ है।

• वातृ → वाउ → वाया।

98. जत्थेव [(जत्थ)+(एव)] जत्थ (अ)=जहाँ एव (अ)=भी पासे (पास) विधि 3/1 सक कइ (अ)=कहीं दुप्पउत्तं (दुप्पउत्तं) भूकृ 2/1 अनि काएण (काअ) 3/1 वाया* (वाया) 3/1 अनि अदु (अ) =या माणसेणं (माणस) 3/1 तत्थेव [(तत्थ)+(एव)] तत्थ (अ)=वहाँ एव (अ)=ही धीरो (धीर) 1/1 वि पडिसाहरेज्जा

(पडिसाहर) विधि 3/1 सक **आइण्णो** (आइण्ण) 1/1 **खिप्पमिव** [(खिप्पं) + (इव)] खिप्पं (अ) = तुरन्त **इव** (अ) = जैसे **क्खलीणं** (क्खलीण) 2/1

* वाच् → वाचा → वाया।

99. **अप्पा** (अप्प) 1/1 **खलु** (अ) = निस्संदेह **सययं** (अ) = सदा **रक्खि-यव्वो** (रक्ख) विधि-कृ 1/1 **सव्विंदिएहिं** [(सव्व) + (इंदिएहिं)] [(सव्व) वि-(इंदिअ) 3/2] **सुसमाहिएहिं** (सु-समाहिअ) 3/2 वि **अरक्खिओ** (अ-रक्खिअ) 1/1 वि **जाइपहं** [(जाइ)-(पह) 2/1 **उवेई**● (उवे) व 3/1 सक **सुरक्खिओ** (सुरक्खिअ) 1/1 वि **सव्वदुहाण** [(सव्व)-(दुह)* 6/2] **मुच्चइ** (मुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि

* कभी-कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)।

● छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

100. **दुल्लहा** (दुल्लह) 1/2 वि **उ** (अ) = निस्सन्देह **मुहा** (अ) = किसी के लाभ के बिना **दाई** (दाइ) 1/2 वि **जीवी** (जीवि) 1/2 वि **वि** (अ) = भी **दो** (दो) 1/2 वि (अ) = ही **गच्छंति** (गच्छ) व 3/2 सक **सोग्गइं** (सोग्गइ) 2/1.

दशवैकालिक चयनिका एवं दशवैकालिक सूत्र-क्रम

चयनिका क्रम	दशवैकालिक सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	दशवैकालिक सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	दशवैकालिक सूत्र-क्रम
1	1	19	77	37	426
2	8	20	78	38	427
3	9	21	271	39	428
4	10	22	272	40	429
5	61	23	273	41	431
6	62	24	274	42	435
7	63	25	275	43	436
8	64	26	276	44	446
9	65	27	283	45	447
10	66	28	388	46	448
11	67	29	418	47	449
12	68	30	419	48	450
13	69	31	420	49	452
14	70	32	421	50	453
15	71	33	422	51	457
16	74	34	423	52	458
17	75	35	424	53	459
18	76	36	425	54	460

दसवेयालियसुत्तं (दशवैकालिक सूत्र) (श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई) 1977
सम्पादक
मुनि श्री पुण्यविजयजी एवं पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक

चयनिका क्रम	दशवैकालिक क्रम-सूत्र	चयनिका क्रम	दशवैकालिक सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	दशवैकालिक सूत्र-क्रम
55	461	71	490	87	527
56	463	72	491	88	530
57	464	73	493	89	535
58	465	74	497	90	537
59	466	75	498	91	538
60	467	76	499	92	539
61	469	77	500	93	541
62	470	78	501	94	543
63	471	79	502	95	554
64	472	80	503	96	555
65	473	81	510	97	558
66	474	82	512	98	573
67	477	83	514	99	575
68	480	84	516	100	213
69	487	85	518		
70	489	86	519		

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1. दसवेयालियसुत्तं : सम्पादक : मुनि श्री पुण्यविजयजी एवं पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई)

2. दसवेयालियं : सम्पादक : मुनि नथमल (जैन विश्व भारती, लाडनूं)

3. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1-2 : व्याख्याता श्री प्यारचन्दजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी बाजार, ब्यावर राजस्थान)

4. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : डॉ. आर. पिशल (बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना)

5. अभिनव प्राकृत व्याकरण : डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

6. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

7. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पं. बेचरदास जीवराज दोशी (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

8. संस्कृत निबन्ध-दर्शिका : वामन शिवराम आप्टे (रामनारायण, बेनीमाधव, इलाहाबाद)

9. प्रौढ़-रचनानुवाद कौमुदी : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)

10. पाइअ-सद्द-महण्णवो : पं. हरगोविन्दास त्रिकमचन्द सेठ (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)

11. संस्कृत हिन्दी-कोश : वामन शिवराम आप्टे (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

12. Sanskrta-English Dictionary : M. Monier Williams (Munshiram Manoharlal, New-Delhi)

13. बृहत् हिन्दी-कोश : सम्पादक : कालिकाप्रसाद आदि (ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)